'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला-हिन्दी-ग्रन्थाङ्क-४३

ज्ञानगंगा तिन पाइयाँ

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

जिन खोजा तिन पाइयाँ

सारभूत वह सब जो—

- देखा
- सुना
- पढ़ा
- समझा

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्रिय श्रीकान्त,

अपनी यह अनुभव-निधि तुम्हे स्नेह-दुलारपूर्वक सौप रहा हूँ। जीवन-पथमे बहुत काम आयेगी, इसे सँभालकर रखना बेटे !

卐

विषय-सूची

जो देखा

जो सुना

जो पढ़ा

जो समझा

जीवन-पथपर भूलते-भटकते खोते-पाते
जो देखा

हृदय-परिवर्त्तन

एक बार रेलके सफरमे हृदय-परिवर्त्तन सबधी प्रसग चल निकला तो एक थानेदारने अपने जीवनकी एक घटना इस प्रकार सुनाई—

"मेरे पडोसमे एक भिखारी भीख माँग रहा था। पडोसीने दुत्कार दिया तो वह मेरे मकानसे गुजरा। मुझे उसकी हालतपर रहम आ गया। मैंने आवाज देते हुए कहा—"बाबा ठहरो, खाना भेजता हूँ।"

मगर वह मेरी आवाजको अनसुनी करके बढता गया। मैंने समझा उसने सुना नही है। अत नौकरको रोटी दे आनेको भेजा। मगर उसने रोटी लेनेसे इनकार कर दिया। नौकरने इसरार किया तो उसने जवाब दिया—जो लोग रिशवत लेते है, मै उनके यहाँका अन्न-जल ग्रहण नही करता।

नौकर उसे गालियाँ बकता चला आया और मुझे भी उसके वे जुमले सुनाये। मै तो सुनकर कट-सा गया। थानेदारकी कोई इस तरह उपेक्षा करे और वह भी दर-दरका भिखारी। मन आत्मग्लानि और क्षोभसे भर-सा गया। रह-रहकर कभी अपनेपर, कभी नौकरपर और कभी उस भिखारीपर, ताव आने लगा।

ऐसे गधेको गुलकन्द दिखाया ही क्यो जाय, जो उसे देखकर आँख फोड दी, आँख फोड दी चिल्ला पडे। क्या जरूरत थी धन्ना सेठ बनने की, और अगर मुझसे गलती हो भी गई थी तो यह कम्बख्त नौकर उसे रोटी देने चला क्यो गया? किसी बहाने काममे लग जाता, बात आई-गई हो जाती, और चला भी गया था, तो जो उस दीवानेने कहा, उसे मुझसे कहनेकी क्या जरूरत थी? और उस मँगतेकी शान तो देखो भीखके टूक और बाजारमें डकार।

इसी रिशवतकी बदौलत पत्नी बलाएँ लेती है, साहबजादे नवाब बने फिरते है, यारोका जमघटा लगा रहता है, बिरादरी और रिश्तेदारियोमे

आव-भगत होती है। रिशवत न लूँ तो कोई कौडीके तीन-तीन भी न पूछे, जो वेतन मिलता है, उससे तो पान-सुपारीका खर्च भी न चले। रिश्वत छोड दूँ तो फिर बीवी-बच्चोके गुलछर्रे, ऑफीसर्सकी डालियाँ, बिरादरीके चन्दे, रिश्तेदारीके लेन-देन सब किस बिरतेपर चल सकेंगे ?

दिलमे कई रोज तक उथल-पुथल मची रही। कभी रिशवतखोरीके गुनाह आँखोके सामने फिरने लगते। कभी वह भिखारी अँगूठा दिखाता हुआ-सा नजर पडता और कभी बीवी-बच्चोकी मासूम शक्ले रोती-सी दिखाई देती।

न जाने एक रोज क्या हुआ, मै रिशवत न लेनेकी कसम खा बैठा। अपने-पराये सभी धीरे-धीरे दुश्मन बनते गये। ऑफीसर्सको नजरो-नियाज़ न पहुँचा सका, इसीलिए तरक्की भी बन्द हो गई। दिल कुछ दिनो तो बेहद घबराया, मगर आत्माको न जाने कैसे बल मिलता ही गया और इष्टमित्रोके समझानेके बावजूद भी अपने निश्चय पर अटल बना रहा। फिर तो वह आत्मसुख मालूम होने लगा, जिसके समक्ष सात बादशाहत भी हेच है।

एक वर्षके बाद किसी फकीरने दरवाजे पर सदा लगाई। जाकर देखा तो वही भिखारी था। मुझे देखते ही बोला—"दाता, दो रोटी दे। बहुत भूखा हूँ।"

मैने कहा—"हम तो रिशवत लेते है बाबा, हमारे यहाँ अन्न-जल तुम कैसे ग्रहण करोगे ?"

वह हँसकर बोला—"तुम रिशवत नही लेते देवता, मै आज तुम्हारा नमक खाकर अपने शरीरको पवित्र करूँगा। तुम्हारे-जैसे संतोषी जीवकी चरण-रज लगानेसे ही मेरी मुक्ति होगी..."

"मैने झुककर उस दिव्य द्रष्टाके पाँव पकड लिये।"

उक्त घटना सुनकर मैं खो-सा गया, फिर जी न चाहा कि किसीसे बात करूँ। इस भ्रष्टाचारके युगमें और वह भी ऐसे भ्रष्ट महकमेमें ऐसे संतोषी मनुष्य मौजूद हैं। मन श्रद्धासे भर गया।

४ सितम्बर १९५१ ई०

● ● ●

संतोषी भिक्षुक

[१]

सन् १९३३ या ३४ की वीर-जयन्तीके अवसर पर मुझे भाषण देनेके लिए हाँसी (हिसार) जाना पड़ा। वहाँ एक दूकानपर बैठे हुए हम ८-१० आदमी हास-परिहास कर रहे थे कि दिनके ११-१२ बजेके क़रीब गेरुआ-वस्त्रधारी दो युवक भिक्षुक सामनेसे गुजरे। उनकी पीठ पर पुस्तकोंके बडे-बडे बण्डल देखकर कौतूहलवश मैंने बुला लिया। वे चुपचाप दूकानमें आकर खडे हो गये तो मैंने व्यंग्यसे पूछा—

"कहिये यह पीठपर पुस्तारा लदा हुआ है या कुछ और?"

"पुस्तकें ही हैं।"

"कौन-सी पुस्तकें हैं?"

"वेद-उपनिषद्, गीता आदि।"

"समझ भी लेते हो या यूं-ही लादे फिरते हो?"

"लादना ही है, इतनी बुद्धि कहाँ कि हृदयंगम कर सकें। दो-चार अक्षर जाने-अनजाने मस्तिष्कमें प्रवेश करते भी हैं, तो वे जीवनमें न उतरकर वहीं चक्कर लगाते रहते हैं। पुस्तकें ही क्या, हम तो अपने जीवनको भी गधेके समान ढोते फिरते हैं।"

मेरे व्यंग्यका उत्तर उन्होंने इतने सरल और मधुर शब्दोंमें दिया कि मैं झेंप-सा गया। मैंने फिर एक-दो चोट की, परन्तु उनपर क्या असर होता? कभी वे खिलखिलाकर हँस पडते और कभी इस तरह चुप हो जाते कि मैं स्वयं पराजयकी ग्लानि-सी महसूस करने लगता। जब मेरे सब वार खाली हो गये तो मैंने वह शक्ति भी फेंक दी, जिसके आगे अच्छे-अच्छे मूर्छित हो जाते हैं। यानी अर्थ-लाभकी शक्ति!

"महाराज, कुछ खाओगे?"

"आप चिन्ता न करें।"

हाँसीके पेडे मशहूर है । उन दिनो एक रुपयेके दो सेरके करीब आये । मै उन्हे देने लगा तो बोले—

"प्रभो ! पहले आप और आपके साथी पायें, फिर हमे भी उसमे-से परसादी दे ।"

तकरीबन ४-४ पेडे सबके हिस्से मे आये । हिस्सेके अनुसार ही भिक्षुकोने लिया । जब सब खा चुके तो वे परस्पर कुछ सकेत-सा करके मुसकराये । आग्रह करने पर बताया कि शहरमे प्रवेश करते हुए एकने कहा—"आज काफी विलम्ब हो गया है, शायद ही भिक्षा मिले ।"

दूसरेने जवाब दिया—"इसकी चिन्ता न करो, भोजन भाग्यमे होगा तो कोई-न-कोई दयालु प्रतीक्षा कर रहा होगा ।" और दाता ! ५ मिनट बाद ही आपके दर्शन हुए ।

मैने कहा—"महाराज, सुबहसे निराहार थे तो आपने पेडे बटवा क्यो दिये ? इन ३-४ पेडोसे क्या तृप्ति होगी ? खैर, कोई बात नही; मै भोजनका प्रबन्ध किये देता हूँ ।"

"नही दाता ! अब हम कल भोजन करेगे, आज कुछ और नही लेगे । दिनमे एक बार जो भी मिल जाय, उसीको लेकर आनन्द होता है ।"

मुझे काफी पछतावा हुआ कि इतने थके-मॉदोका ४-४ पेडोसे क्या बनेगा ? पहले ही भरपेट भोजन क्यो न करा दिया ? थोडा-सा भोजन लेनेका मैने फिर अनुरोध किया, किन्तु वे मुसकराते हुए इस तरह अचल बने रहे कि मै और कुछ भी न खिला सका ।

जब वे चलने लगे तो मैने कहा—"महाराज ! कभी दिल्लीकी तरफ आना बने तो, गरीबकी कुटियापर भी पधारे ?"

× × ×

करीब २-३ वर्षके बाद उनमे-से एक साधु सन्ध्याके समय एकाएक घरपर आये । पूछने पर मालूम हुआ कि दूसरे भिक्षुकका स्वर्गवास

हो गया है, और वे केवल अपने वादेको पूरा करनेके लिए अलीगढ़से चलकर मेरे लिए पधारे हैं। और कल फिर उसी ओरको रम जाएँगे।

एक-दो दिन ठहरनेका आग्रह किया तो बोले—"दाता! साधु गृहस्थोंके यहाँ नही ठहरते। वे तो रमते राम ही शोभा पाते हैं।" मार्ग-व्यय आदि भी नही लिया। धूप-वर्षासे बचनेको छतरी भी स्वीकार नही की। भोजन किया, वह भी अल्प। आशीर्वाद देते और मुसकराते हुए चले गये। फिर आज तक दर्शन नही हुए। सैकडो भिक्षुक गलियोमें रोजाना आते-जाते हैं, परन्तु वे दिखाई नही देते।

[२]

अक्तूबर १९४१ की बात है, मैं हिसारसे दिल्ली आ रहा था, करीब रातके १२-१ बजे नारनौल या रिवाडीके स्टेशनपर गाडी एक घण्टेके करीब रुकी। गुलाबी सर्दी पड रही थी, प्लेटफार्मपर एक फकीर केवल लँगोटी लगाये इधर-उधर तेजीसे चक्कर लगा रहा था। पागलो-जैसी हालत थी। मैंने यह हालत देखकर उसको चाय और डबलरोटी खिला देनेके लिए चायवालेको आदेश दिया तो वह बोला—"हुजूर, यह तो कुछ लेगा नही।"

"क्या बकते हो, क्यो नही लेगा ?"

"हुजूर बुरा न माने, यह किसीसे कुछ नही लेता। आस-पासके गाँववाले और स्टेशनके मुसाफिर अक्सर मिन्नत-समाजत करते हैं, मगर यह किसीकी बात नही सुनता, और इसी तरह पडा रहता है।"

"यह कैसे हो सकता है, नही खाता तो फिर जीवित कैसे रहता है ?"

"भगवान् जाने हुजूर, न जाने कब और कहाँ खा आता है, आज तक तो पता चला नही।"

मुझे विश्वास न हुआ, स्वय उसके पास जाकर कुछ खा-पी लेनेको कहा तो, मुझे उत्तर दिये बिना ही आगे बढ गया। मैंने आगे बढकर दीनता

भरे स्वरमें फिर निवेदन किया, परन्तु वह परमहंसोंकी तरह घूमता हुआ आगे बढ़ता गया। मैं खिसियाना-सा खड़ा देखता रहा। गाड़ी चली तो औंधे मुँह अपनी सीट पर लेट गया। फिर नींद क्या आनी थी?

४ सितम्बर १९५१ ई०

अकिञ्चन या चक्रवर्ती

सन् १९४२ के उपद्रवोके दिनोंमें डेहरी-ऑन-सोनसे दिल्ली जाना पड़ा था। एक तो लडाईके दिन, दूसरे रेलवे-तोड-फोड-आन्दोलन। स्वर्गमें सीट रिजर्व हो जाना सरल, परन्तु रेलवे फर्स्ट-सेकेण्डमें भी पाँव रखनेको स्थान मिलना असम्भव। जिन्हे जगह मिल पाती थी, प्लेटफार्मपर रहे यात्री उनके भाग्यकी सराहना किया करते थे। रेलवे बाबुओको तो छोडिये, कुली और पानीपाण्डे भी यात्रियोको भेड़-बकरियोंसे अधिक तरजीह नही देते थे।

मुझे प्यासने जब अधमरा-सा कर दिया, तब एक स्टेशन पर पानीपाण्डे दिखाई दिया तो गिलास भर देनेको बेतहाशा आवाज़ लगाई। पानी लेनेके बाद इकन्नी दी तो लेनेसे इनकार कर दिया। मैंने समझा शायद थोडे समझकर नही लेता है, अन्य वस्तुओकी तरह शायद स्टेशनी जलकी कीमत भी बढ गई है। इसलिए दो इकन्नी थमाने लगा, तो वह खीजकर बोला—"साहब पैसे किस बातके लूं, मुझे तो नौकरी ही इस बातकी मिलती है।"

इतनेमें गाडी चल दी तो मैंने प्लेटफार्म पर उसके लिए दोनो इकन्नियाँ डाल दी। मेरी इस हरकतको देखकर उसने बडबडाते हुए कहा—"वाह साहब,अच्छे रईस आये,पानी-का-पानी पी गये और ईमान-का-ईमान खराब कर गये।" फिर झुककर दोनो इकन्नियाँ इस तरह उठाई मानो बच्चेकी छी-छी उठा रहा हो! जी चाहा कि उतरकर इस जीवन-मुक्तके पाँव पकड़ लूं, मगर ट्रेन रफ्तार पकड चुकी थी। फिर कई बार खोजनेका प्रयत्न किया, परन्तु न स्टेशनका नाम याद रहा, न उसकी सूरतका ही खयाल रहा। जब पेशगी इकन्नी लेकर पानीपाण्डे पौन गिलास भरकर देते है, तब बरबस उसकी याद आ जाती है।

४ सितम्बर १९५१ ई०

शाने-मुफ़लिसी

दिसम्बर १९४१ ई० की बात है, हम ४-५ साथी मद्रासमे दिल्ली जा रहे थे। मद्रासी भोजनके अभ्यस्त न होनेके कारण करीब २४ घण्टे निराहार रहकर भूखका लुत्फ उठाते रहे। लतीफे कहते हुए, करवटे बदलते हुए, अखबार पढते हुए, निर्दिष्ट स्टेशनपर यथारुचि भोजन मिलनेकी कल्पनाके मजे लेते हुए वर्धा या नागपुरके स्टेशनपर गाडी अभी पूरी तरह ठहरने भी न पायी थी कि ४-५ थालोका आर्डर दे दिया गया।

उन दिनो नागपुर या वर्धासे रेस्टोरॉ बोगी लगती थी। जिसमे सम्भवत बारह आनेमे शुद्ध और स्वादिष्ट भोजनका थाल मिलता था। मारवाडी ब्राह्मण भोजन बनाता था। तब तक न तो आजकी तरह वनस्पति घीका सर्वव्यापी प्रचार हो पाया था और न युद्ध-जनित मँहगाई विशेष बढने पाई थी।

हमारे सामनेकी सीटपर एक सज्जन और बैठे हुए थे, जो हमारी तरह मद्राससे निराहार यात्रा कर रहे थे। सभ्यतावश हमने उनके लिए भी थाल मँगाना चाहा, परन्तु उन्होने नम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया और गाडी ठहरनेपर प्लेटफार्मपर चले गये। मैने समझा कि धार्मिक दृष्टिसे थाल नही मँगवाया है और प्लेटफार्मपर अपनी रुचिकी मिठाई-पूरी आदि खाने गये है।

खाना खानेके बाद हाथ-मुँह धोनेको मै जो नीचे उतरा तो वे यूँ ही प्लेटफार्म पर घूमते हुए नजर आये। मै पास जाकर बोला—"अरे साहब, आप यह क्या जुल्म कर रहे है, न आपने थाल मँगाने दिया, न आपने अभी तक स्टेशनपर ही कुछ खाया। जल्दी खा-पी लीजिये। ट्रेन छूटनेमे विलम्ब नही है।"

"मेरी तबियत कुछ ठीक नही है, मै कुछ भी नही लूँगा।"

"आप भी खूब है। तबियत क्या खराब है? भोजन न करने से और भी खराब हो जायेगी। २४ घण्टेका अभी और सफर करना है। भोजन न करना चाहे तो दूध-फल, लेमन, आदि जो मिजाज चाहे ले लीजिये।"

मुझे भोजनके लिए व-जिद देखकर वे सकुचाते हुए बोले—"आपने अब क्या छिपाऊँ। मैं आपके बराबर बैठने योग्य नही। इन अच्छे कपडोसे आप मुझे भी कुलीन और शिक्षित समझ रहे है। लेकिन मैं तो रेलवेके फलाँ ऑफिसरका चपरासी हूँ। छुट्टी जाते हुए वे मुझे दिल्लीसे मद्रास तक ले गये थे। मद्रास पहुँचते ही उनकी ट्रेन जा रही थी, किसी तरह उनको सवार कराया। जल्दीमे अपना बटुआ भी उनके बक्ससे न निकाल पाया कि ट्रेन छूट गयी। शुक्र है कि मेरा रेलवे पास मेरे पास था। वरना दिल्ली पहुँचना मुश्किल हो जाता।"

मैंने स्नेहपूर्वक कहा—"भई, यह तुमने व्यर्थका तकल्लुफ किया। सफर जब एक साथ कर रहे है, तब कौन छोटा, कौन बडा और तुमने हमको ही कैसे कुलीन और शिक्षित समझ लिया? मद्राससे साथ आ रहे हो। हम खाना खा ले और तुम ४८ घण्टे भूखे रहो, यह तो हम पर जुल्म है। तुम सीधे रेस्टोराँ बोगीमे चले जाओ और मन पसन्दका भोजन कर आओ। अब अपने डिब्बेमे थाल मँगानेका समय नही रहा है।"

यह कहकर मैंने बहुत आजिजीके साथ एक रुपया उनकी जेबमे डाल दिया और कहा कि मेरे सिवा इसका आभासतक दूसरोको न होने पायेगा। पहिले तो उसने काफी हील-हुज्जत की, परन्तु मेरे अनुरोधपर वह चुप हो गया।

मैं अपने डिब्बेमें आ गया और आश्वस्त हो गया कि वह भोजन करने बोगीमें चले गये है। मुझे बेहद आत्म-सन्तोष हुआ कि एक स्वाभिमानीको बाइज्जत भोजन करा सकनेमे सफल हुआ। अगले स्टेशन पर वे भी डिब्बेमें आ गये और हम सबने घुल-मिलकर दिल्लीतक आरामसे सफर किया।

दिल्ली प्लेटफार्म पर उतरकर हम जब वाहर चलनेको उद्यत हुए तो वह चुपचाप मेरे पास आया और मेरी जेवमे रुपया डालकर मुझे इस तरह देखने लगा कि गोया उसकी मुफलिसीकी आवरू मेरे हाथमे है। मै तनिक भी कुछ कहूँगा तो उसकी निधि चौडेमे लुट जायगी। मै अब भला उससे क्या कहता। मन ही मनमे खीज उठा। कम्वख्तने अपनी तनिक-सी आन-वानके पीछे सफरका समस्त आनन्द चौपट कर दिया। उसकी तरफ मैने देखा भी नही और कुलीपर सामान उठवाकर हम लोग वाहर आ गये। ताँगेमे वैठने पर कुलीको वही रुपया थमा दिया जो चपरासीने जेवमें डाल दिया था।

कुलीने पुन वह रुपया मुझे वापिस दिया तो मुझे वहम हुआ कि रुपया खोटा है। अत घवराकर मैने उस रुपयेको देखा कि कही मैने उस चपरासी-को खोटा रुपया तो नही दे दिया था। शायद नही चलनेकी वजहसे ही उसने वापिस कर दिया होगा। भला वह गरीव भी अपने मनमे क्या सोचता होगा। रुपया देखा तो खराव न था। लौटानेका कारण पूछा तो कुली वोला—"हुजूर, मेरे पास वापिस देनेको रेजगारी नही है।" वह इतना कहने भी न पाया था कि न जाने मुझे क्या हुआ? तावमे भरकर वोला—"वडे अफलातून वनते हो। रेजगारी नही है। किस कम्वख्तने तुमसे वाकी देनेको कहा था? अहमक कहीके। यूं भूखे मरते हैं, मगर जब दो, तव लेते नही। क्या खूव! भीखके टूक और वाजारमे डकार।"

रुपया उसके हाथमे देनेके वजाय मैने जमीनपर फेंक दिया और ताँगेवालेको वढनेका इशारा किया। रुपया उठाते हुए कुलीने सलाम किया और आजिजीसे वोला—

"हुजूरकी शानमे गुलामने तो एक लफ्ज भी वेअदवीका नही कहा"

मुझे फिर तैश आ गया। ताँगा चल रहा था और मै उसे झाड़ रहा था—"तुम्हारी हैसियत क्या है, जो कुछ कहोगे? दो कौडीका

आदमी, कहता है कि मैंने तो कुछ भी नहीं कहा। समझ क्या रक्खा है अपनेको ?"

कुली नजरोंसे ओझल हुआ तो ताँगे वालेसे उलझनेको जी चाहा। मगर कम्बख्तने ऐसा मौका ही न दिया। साथियोंने घर आकर पूछा—"आज तुम्हें यह यकायक हो क्या गया है ?" अब भला बताइये, मैं उन भले मानुषोंको कैसे बताऊँ कि एक मामूली आदमीने अपनी शाने-मुफलिसीसे मेरी शाने-हातिमताई चूर-चूर कर दी है। बकौल 'गालिब'—

कोई यह बतलाये हम बतलायें क्या ?

३ जुलाई १९५४ ई०

इन्सानियत

दिल्लीमें सदर वाजार इलाकेके म्यूनिस्पल-चुनाव वहुत खतरनाक होते हे। दस-वीसके सर फूट जाना तो मामूली बात है। अमन-चैन वनाये रखनेके लिए मशीनगनें और घुडसवार पुलिस भी घूमती है, फिर भी खून हो जाते हैं। पक्ष-विपक्षकी ओरसे ५०-६० हजार रुपयोपर पानी फिर जाना वडी वात नही। चुनावके दिनोमें ही सघर्ष नही होते, उसके वाद भी दाव-पेंच चलते रहते है और विजयी-विजित दोनो ही अपने-अपने रियाज वढाते रहते है। इन चुनावोका घातक परिणाम यह हुआ है कि सदर वाजारके निवासियोका दैनिक जीवन विपमय वन गया है, और आपसका सगठन छिन्न-भिन्न हो गया है। फिर भी एक घटना मानवोचित है।

इसी इलाकेके एक विजेता सदस्यके पास दूसरे शहरके कोई परिचित महाशय आये और इनसे विरोधी पक्षके सम्वन्धमे पूछा—

"क्यो साहव! आप लाला...को जानते है?"

"वहुत अच्छी तरह, फरमाइये क्या वात है?"

"वे अपनी लडकीका रिश्ता...?"

"अवश्य लीजिये, वे हमारे यहॉके अत्यन्त सम्भ्रान्त और प्रतिष्ठित व्यक्ति हे, और उनकी कन्या तो मेरी लडकीकी सहेली है, वड़ी सुशील और देवी-जैसा रूप!"

× × ×

वारात आई, मगर सिफारिश करनेवाले दिखाई नही दिये। वेटेवालेका अनुमान था कि शादीमें वही कर्ता-धर्ता होगे। जव विदाके वक्त भी न मिले तो वेटीवालेसे पूछा—"क्यो साहव, मि०...दिखाई नही दिये? क्या कही वाहर तशरीफ ले गये हे?"

"उनके हमारे राहो-रस्म वन्द है।"

"है ?"

"जी, इलेक्शन्सकी वजहसे वे हमारे जानी दुश्मन है ।"

"यह आपका खाम खयाल है ।"

"नही साहब ! आपको धोखा हुआ है, हम तो एक-दूसरेकी शक्लसे नालाँ है ।"

"वेशक, आपका फरमाना वजा है, तब तो मुझे जरूर धोखा दिया गया है ।"

"वात क्या है साहब ! साफ-साफ फरमाइये न ?"

"क्या साफ-साफ अर्ज करूँ और क्या न करूँ ? अगर आपसे उनकी दुश्मनी थी, तो आपसे वदला चुकाते । मैने उनका क्या विगाडा था, जो मुझसे यह फरेव किया ?"

"माजरा क्या है हुजूर ! कुछ मै भी तो सुनूं ?"

"अरे साहब ! उन्हीके विश्वासपर तो मैने रिश्ता लिया, लडकी तक नही देखी ! भगवान् खैर करे,. ?"

"खैर, उस विश्वासमे तो अन्तर नही पडेगा, लडकी आपकी आशाके अनुरूप होगी । लेकिन मि०. इतने सहृदय और नेक इन्सान है, यह मुझे मालूम न था ।"

इसी सिलसिलेमें दो घटनाएँ और याद आ गई—

[१]

सदर वाजारके वोटर्सको पोलिंग स्टेशनपर ले जानेके लिए पक्ष-विपक्ष-की कारें, लारियाँ, ताँगे एक-दूसरेसे होड ले रहे थे कि एक कार, जिसमें स्त्रियाँ वोटर वैठी थी, चलते-चलते खराव हो गई । स्त्रियाँ उतरकर अनजानमें विपक्षीकी कारमें वैठने लगी तो ड्राइवरने झिडक दिया । ड्राइवरका यह वर्ताव हमारे एक परिचित वन्धुको नागवार गुजरा । यद्यपि वे भी विपक्षीके प्रवल समर्थक थे, और चुनाव-स्थलतक वोटर्सको पहुँचानेके लिए ही वह कार उनके डिस्पोजलपर थी । फिर भी महिलाओंका अपमान-सा होता देख वे तत्काल वोले—

"क्या करते हो ? यह हमारे परिचित इष्ट-मित्रोकी बहू-बेटियाँ हैं। और सबसे बडी बात ये है कि यह हमारी मातृजाति है। इनका असम्मान करना अपनी माँका अपमान करना है। इन विचारियोको शत्रु-मित्रकी क्या पहचान ? इनके अभिभावकोने जो आदेश दिया है, उसका पालन करेंगी।"

और इस नेक इन्साननं उन महिलाओको आदरपूर्वक विरोधी पक्षके डेरेमे पहुँचा दिया।

[२]

एक बार हमारे एक मित्र सपत्नीक इण्टर क्लासमें सफर कर रहे थे कि नगीना स्टेशनपर १५-२० स्त्रियाँ उसमें घुस आई और उनके साथी पुरुषने उनको दूसरी गाडीमें जानेके लिए आदेश दिया। कारण पूछनेपर बतलाया गया कि यह डिब्बा जनाना बना दिया गया है। महिलाओके सम्मानके लिए वे अवश्य उतर जाते, लेकिन आदेश कुछ इस ढगसे दिया गया था जो मानवोचित न होकर, अपमानजनक था। जब इतनी दूरसे इस डिब्बेमें सफर किया जा रहा है, तब बीचमें यह परिवर्तन नियम-विरुद्ध था। दूसरे सम्मानका भी प्रश्न था। अत उतरनेसे मना कर दिया गया। स्टेशन-मास्टर और हवलदार बुलाये गये तो उन्हें भी दुतकार दिया गया। इतनेमे ही उन्हें अपने एक प्रतिद्वन्द्वी आते दिखाई दिये तो तनिक घबराये-से हो गये। और सोचने लगे कि अब यह स्टेशन-मास्टरका पक्ष लेकर कहेगा कि 'हाँ साहब ! इन्हें जरूर उतारिये, इनकी तो झगडा-फिसाद करनेकी आदत पडी हुई है।" परन्तु उनकी आशाके विपरीत उसने स्टेशन-मास्टरको ही डाँटा और उनसे कहा—"आप हरगिज डिब्बेसे न उतरें, हम आपके साथ हैं।"

डिब्बेसे तो वे जब भी न उतरते, जबकि उनका प्रतिद्वन्द्वी भी विरोधी पक्षकी ओर मिल जाता, किन्तु उसकी सहृदयताने उनको पानी-पानी कर दिया।

जुलाई १९५१ ई०

नादिहन्द

सन् १९२४की सर्दियोंकी बात है, २-३माहसे माँ सख्त बीमार थी। डाक्टरोंका कहना था कि दवाके बजाय दुआ और टहलसे आराम हो तो हो।

उन दिनो जीविकोपार्जनके लिए साडियाँ काढनेकी मशीन लगा रक्खी थी। २–३ माह दिन-रात परिचर्यामे लगे रहनेके कारण रोजगार चौपट हो गया था। आमदनीके सभी स्रोत सूख चुके थे। जो थोडी-बहुत जमा-पूंजी थी, डाक्टर-वैद्योकी नजर हो चुकी थी। धीरे-धीरे नौबत यहाँतक पहुँच गई कि एक रोज पासमे फूटी कौड़ी न रही। दवा तो दरकिनार, दूध और फल भी कैसे लाये जाये, कुछ सूझ ही न पडता था।

चुपचाप बाहर बरामदेमे गर्दन लटकाये बैठा था। माँके पास जानेका साहस ही न होता था कि न जाने कब दूध या फलके रसके लिए सकेत कर बैठे। मुझे अपनी इस असहाय स्थितिपर अकथनीय आत्म-ग्लानि हो रही थी। मन-ही-मनमे छटपटा रहा था। किसीको पता न चल जाय, यह आशका और भी खाये जा रही थी। एक अनिर्वचनीय घुटन-सी हो रही थी कि इतनेमे ही किसीने बाहरसे आवाज दी। दरवाजा खोला तो एक परिचित मुसलमान बुड्ढा खडा था। ३–४ वर्ष पूर्व कोई बहुत जरूरी आवश्यकता बताकर वह १५ रु० उधार ले गया था। बादमे मालूम हुआ कि वह तो बहुत बडा नादिहन्द है। ले के देना और कमाके खाना, वह बहुत बड़ा गुनाह समझता है। एकाध बार साहस बटोरकर तकाज़ा किया भी तो, स्वय मुझे ही शर्म-सी मालूम दी। लाचार सब्र कर लिया।

उसने मुझे देखते ही १६ रु० हाथपर रख दिये। मैने कहा—"रुपये तो आपने १५) ही लिये थे। यह एक रुपया ज्यादे कैसा?"

वह बोला—"नही, मैने सोलह लिये थे।"

मैने अपनी डायरी देखी तो १५रु० ही उसके नाम थे। अत उसका

एक रुपया लौटाते हुए बोला—"डायरीमें भी पन्द्रह ही लिखे है,यह अपना रुपया वापिस लो।"

वह १६ देने की ही ज़िद करता रहा और कहता रहा कि आपने १६ ही दिये थे। मगर जब मै किसी तरह भी उसका एक रुपया बढती लेनेको प्रस्तुत नही हुआ तो बोला–"अच्छा जी, यह हमीसे चालबाज़ी ?"

मुझे उसके इस भोलेपन पर हँसी आगई। मैने सहास्य कहा—"चाल-बाज़ी तुम,कर रहे हो या मै ? अपना रुपया वापिस लेते हो या फेंकूं इसे नालीमें ?"

उसने रुपयेके लिए हाथ बढाते हुए कहा—"अच्छा जैसी तेरी मर्जी। अगर कम लिया तो ख़ुदाके सामने जवाबदेह होगा ?"

अब मुझे भी ताव आगया। उसके सब रुपये जमीनपर फेककर बोला—"बडे ख़ुदा वाले बनते हो। हमेशाके नादिहन्द, एक रुपया बढती देकर ख़ुदाके सामने सुर्ख़रू होना चाहते हो! चलो हटो यहाँसे। हमारा ही रुपया और हमी जवाबदेह होगे ? क्या ख़ूब ?"

चुप-चाप रुपये बटोरकर १५ रु० मेरे हाथमे रखते हुए वह बोला—"अच्छा बाबा, खफा क्यो होता है। हमी बेईमान सही।"

रुपये लेकर मै जाने लगा तो वह बोला—"जालिम तेरी इस अदाने ही तो मार डाला। न कभी तकाजा किया न कभी उलाहना ही दिया। ३–४ बरसमें देने आया तो उतने ही लिये, ज्यादा न लिये।"

मुझे फिर हँसी आगई तो वह बोला–"हँसता क्या है बेटे ? ख़ुदा जानता है ६० वर्षकी उम्रमे आज पहली बार लेकर तुझे दे रहा हूँ। न जाने किस ताकतने तेरे रुपये लौटा देनेको मजबूर कर दिया। खाना-पीना सब हराम मालूम होने लगा था . . ।" और न जाने वह क्या-क्या कहता रहा, मै तो दूध-फल लानेके लिए लपक लिया। कारूँका खज़ाना जो हाथ लग गया था उस रोज़।

२० मार्च १९५५ ई०

सहृदयताका मूल्य

इसीसे मिलती-जुलती एक वरसके वादकी एक घटना और स्मरण हो आई।

एक आदमी पुलवगशके सरकारी अस्पतालमें कम्पाउण्डर था। उसकी खुशपोशी और जामाजेवीके कारण मैं उसे डाक्टर समझे हुए था। मैं उन दिनो खद्दरका व्यापार करता था। एक रोज उसने ६० रु० का खद्दर लिया और सौ रुपयेका नोट दिया तो सयोगकी वात मेरे पास देनेको ४० रु० उस वक्त न निकले। मैंने तकल्लुफन कह दिया—"कोई वात नही, रुपये फिर आजायेगे, आप कपडा ले जाइये।" और वह धन्यवाद देते हुए सचमुच कपडा ले गया।

एक रोज़ प्रतीक्षा करनेके वाद जव रुपये नही आये तो मैंने डिस्पेन्सरी आदमी भेजा। उसने आकर रिपोर्ट दी कि वह डाक्टर-वाक्टर कुछ भी नही, टैम्परेरी कम्पाउण्डर था, और तारीफ यह कि उसी रोज़ उसकी नौकरी भी छुट गई।

सुनकर चिन्तित हुआ। किसी तरह रिहाइशका पता लगाया। तकाजा करने पर सुवह-शाम, आज-कलके वहाने वतलाने लगा। दो-चार रोज़ हेरा-फेरी करनेके वाद वोला—"आप अन्दर आ जाइये, रुपये देता हूँ।"

मैं सहमते हुए अन्दर चला गया। भय यह कि अन्दर जाकर न जाने क्या वोहतान गले मढेगा? न जाऊँ तो मुझे भयभीत समझकर हावी हो जायेगा। जो थोडी-वहुत रुपये मिलनेकी क्षीण आशा है, वह भी विलीन हो जायगी।

झिझकते हुए अन्दर गया तो सहनमें एक युवा स्त्री चारपाई पर पडी हुई थी। वही मेरे लिए भी मूढा विछाकर अन्दरसे ज़ेवरका सन्दूक लाकर वोला—"माफ करना लालाजी, इधर मेरी वाइफको निमोनिया

हो गया है, उधर मेरी नौकरी जाती रही है। बहुत परेशानीमें फँसा हुआ हूँ। आप इसमें-से कोई मुनासिब जेवर ले जाइये। थोड़े दिन बाद रुपये देकर ज़ेवर छुड़ा लूँगा।"

मेरी हालत अजीब थी। जान-न-पहचान बड़ी बीको सलाम। अच्छे फँसे। एकाध रुपया ब-मुश्किल नफा मिलता कि मूल ही गायब हो रहा है। मूलके लालचमें हाथी गँवा देनेकी बात थी। पत्नी बीमार, नौकरी छुटी हुई, यह रुपये कैसे दे सकेगा? मगर ऐसी स्थितिमें जेवर लेना भी तो कफन-खसोट-जैसा होगा। एक क्षणमें ही निश्चय करके बोला—"आप जेवर रखिये। न मालूम आपको इसकी कब जरूरत पड़ जाय। जब आपके पास रुपये हो, तब भिजवा दीजिये। मैं जेवर नही ले जा सकूँगा।"

वह कृतज्ञ स्वरमें बोला—"लाला जी, तीसरे रोज़ मेरा भाई आयेगा। आप १०–११ बजे आजाइये। आप विश्वास रखिये, आपके रुपये देकर जायेंगे।"

बहता हुआ खरबूजा मैं तो कृष्णार्पण कर ही चुका था। फिर भी उस आदमीकी साख देखनेको तीसरे रोज़ १० बजे जाकर आवाज दी। वह मुझे फिर अन्दर ले गया। देखा तो न वहाँ चारपाई थी, न घरमें कोई और सामान। जाते ही उसने दस-दसके छ नोट मुझे दिये और बोला—"लालाजी, आप ही का इन्तजार कर रहा था। बीबी-बच्चोको मय सामान-के रातको ही चुपके-से भाई साहबके साथ घर भेज दिया है, ताकि और तकाजगीरोको पता न लगे। सिर्फ आपके लिए रुका हुआ था। एक बार तो जी चाहा कि मैं भी चल दूँ, परन्तु धिक्कारी-सी आने लगी कि जिसने बीमार पत्नीको देखकर जेवर छुआ तक नही उसके रुपये लेकर कैसे मागूँ?"

मैं धन्यवाद देकर चलने लगा तो बोला—"लालाजी, आप बड़े भाग्य-शाली और दूरन्देश है। आपने उस रोज़ ज़ेवर छ भी लिया होता तो भगवान् जाने फिर आप कहाँ होते?"

२० मार्च १९५५ ई०

यमराज-सहोदर

सन् १६३८ या ३६ की बात है कि हम ४-५ साथी सदैवकी भाँति जीतगढपर प्रात.कालीन सैरको जा रहे थे। साथियोमे एक-से-एक बढकर जिन्दादिल, हाज़िरजवाब और खुशमजाक थे। शेरो-शायरी, लतीफे, गप-शपका बेहद लुत्फ रहता था।

एक रोज सुमतसाहब बोले—"लो भई, हमे तो अब कास्टरायल पीना पडेगा।"

विमलभाई घबराकर बोले—"क्यो भई खैर तो है?"

सुमतसाहबने सामनेकी तरफ सकेत करते हुए कहा—"वोह सामनेसे डाक्टर आ रहा है, चचा-जानका दुआ-सलामी दोस्त है। हमसे भी सलामकी तवक्कोअ रखता है। न करे तो टोक बैठता है। भई हम तो ऐसी जब्रिया दुआ-सलामको कास्टरायल पीनेसे कम नही समझते।"

और वाकई जब वे बराबरसे गुजरे तो सुमतसाहबने उन्हे एक अदद सलाम झुकाया। बातचीतका प्रसग न जाने क्या चल रहा था कि डाक्टरको सामनेसे गुज़रते देख विमलभाई बोले—"इन डाक्टरो-वैद्योकी परछाईसे भी भगवान् बचाये। इनके चाटे वृक्ष हरे नही होते। कहते है एक वैद्य जब अपने गाँवमें प्रवेश करने लगे तो उन्हे गाँवमे एक शव आता हुआ दिखाई दिया। शवको देखकर वे आश्चर्यचकित होकर सोचने लगे कि यह हुआ तो हुआ कैसे? जब कई रोज़से न मै गाँवमे था, न मेरा भाई था। फिर यह मरा तो मरा कैसे?" ऐसे ही लोगोको लक्ष करके किसीने क्या खूब कहा है—"वैद्यराज नमस्तुभ्य यमराजसहोदर"

लतीफ़ा पुराना था, मगर बरमहल कुछ इस अन्दाज़से कहा गया कि सब मुसकरा उठे।

लतीफा सुनकर साथी मित्र डा० प्रकाश बोले—"अरे साहब, मै एक

आप बीती घटना सुनाता हूँ, वह तो दैवी सहायता मिल गई, वरना जालिमोंने मिलकर मार ही डाला था।"

"करीव दो साल पहलेकी वात है, कलकत्तेसे डेण्टल सर्जरी पास करके मैं आया था। व-मुश्किल ४-५ माह मुझे काम करते हुए होंगे कि मन्द ज्वर-सा रहने लगा। जब ४-५ रोज तबीयत गिरी-पडी-सी मालूम दी तो मैं अपने फैमिली डाक्टरके यहाँ गया। उन्होंने करीव आध घण्टेकी परीक्षाके वाद सकुचाते हुए कहा—"मुझे कुछ टी वी का शुवहा है, मैं स्लिप दिये देता हूँ, आप फलाँ डाक्टरसे एक्सरे करा लें। स्लिप लेकर एक्सरे-डाक्टरके पास पहुँचा तो उसे भी एक्सरे-प्लेट में टी वी. नजर आई। टी. वी का नाम सुना तो घर भरमे घवराहट फैल गई। इतना अच्छा स्वास्थ्य, यह नौजवानी और फिर भी टी वी, फिर क्या था। विस्तरे पर पडे रहनेका आर्डर दे दिया गया। खाना वन्द कर दिया गया। दवायें, रस, और परहेज, चुपचाप विस्तरे पर पडा हुआ मौतकी घडियाँ गिनने लगा। नई-नई शादी हुई थी। फिर भी पत्नी मुझे सान्त्वना देती रहती, परन्तु उसे स्वय वैधव्य नजर आने लगा था।

उन्ही दिनो हिसारके एक एलोपैथिक डाक्टर अपने दाँतोंके सम्बन्धमें मुझसे परामर्श लेनेके लिए दिल्ली आये हुए थे। मुझसे तारीख, समय निश्चित करके ही वे हिसारसे दिल्ली आये थे, परन्तु कई बार प्रयत्न करने पर भी वे मुझसे मुलाकात न कर सके। मुलाकात होती भी कैसे? डिस्पेन्सरी मेरा जाना वन्द कर दिया गया था और घर पर भी किसीको मिलने नही दिया जाता था। क्योंकि घरवाले अभी इस वातको पोशीदा रखना चाहते थे। एक रोज वे वहुत ही जिद पकड गये तो फोन पर यूँ गुफ्तगू हुई।

"डाक्टर जैन! आप डाक्टर होते हुए भी एक डाक्टरको परेशान कर रहे हैं। मुझे ३-४ रोज आये हुए हो गये। कई वार प्रयत्न करने पर भी

आपका नियाज हासिल न हो सका। विद फैमिली आया हूँ। यूँ आखिर कब तक यहाँ पडा रहूँ?"

"डाक्टर साहब मै खुद नादिम हूँ कि आपको बुलाकर नाहक परेशान किया। मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ डाक्टरोने पूर्ण विश्रामकी सलाह दी है।"

"अरे भई जैन साहब, मै भी तो एलोपैथिक डाक्टर हूँ। अगर आप मुझे अपना पेशेण्ट नही बनाना चाहते तो स्वय आप मेरे पेशेण्ट बन जाइये।"

"यह कैसे सम्भव हो सकता है? हमारे फैमली डाक्टर देहली के .. मशहूर डाक्टर है। वे क्या कहेंगे और घरवाले तो हरगिज नही मानेगे?"

"अरे भई, यह तो मजाककी बात थी। कौन कम्बख्त तुम्हे बीमार समझता है। अगर मेरे आनेसे घरमें झमेला होनेका अन्देशा है तो तुम किसी तरकीबसे मेरे यहाँ आ जाओ। चगा करके घर न भेजा तो आजसे डाक्टरी करना छोड दूँगा।"

न जाने साहब उसकी बातमे क्या कशिश थी कि मै चुपचाप घरसे खिसक लिया। उनके यहाँ कारसे उतरा तो वे खाना खानेके लिए बैठे ही थे। मुझे भी सामने कुर्सी पर बिठा लिया। खानेका थाल आया तो बोले--

"आओ भई जैन साहब, पहले साथ-साथ खाना खाये। फिर निश्चित होकर बातचीत करेंगे।"

मैने मुसकराकर जवाब दिया--"शुक्रिया आप शौक फरमाये।" वे मेरा हाथ पकडनेका प्रयत्न करते हुए बोले--

"नही भई, तकल्लुफ हमारे यहाँ नही चलेगा। जो भी परदेशमें रूखा-सूखा मयस्सर है सुदामाका साग-पात समझकर खाइये।"

जब उसने बहुत ही आग्रह किया तो मैं चिढ-सा गया और झुँझलाकर बोला--"आप कैसे डाक्टर है। ४-५ रोजसे अन्न तक बन्द है। मुझे

टी बी है। फिर भी आप कढी, चावल, रोटी, आलू खिलानेको व-जिद है। क्या इसीलिए आपने मुझे बुलाया था।"

वे तनिक आवेश भरे स्वरमे बोले—"मि० जैन या तो आप मुझे दीवाना समझ रहे है या स्वय आपेमें नही है। जब आप जानते है कि मै डाक्टर हूँ और डाक्टर छूत-छातका इतना अधिक खयाल रखते है कि अपनी सन्तानका लिहाज भी नही करते। तब मै एक टी. बी के रोगीके साथ एक ही थालीमे खाना चाह रहा हूँ, इसके मानी है कि मेरे दिमागमें खलल है और मै जानबूझ कर मौतको दावत दे रहा हूँ।"

मै शोखी भरे लहजेमें बोला—"नही, ऐसी तो मै कोई बात नही देखता।"

वे तुरन्त बोले—"यदि आप मुझे पागल नही समझते है तो आइये पहिले मेरे साथ खाना खाइये। फिर चलकर उस उल्लूके पट्ठेके पाँच जूते मारिये, जिसने आपके टी० बी० बतलाई है।"

"एक तो उसके कहनेका अन्दाज़ आकर्षक था, उसपर ४–५ रोज अन्न खाये हो गये थे। मन ललचा गया। हाथ धोकर पिल पडा और ठाटमे भोजन किया। भोजनके बाद उसने मुझे घर नही आने दिया। सीधे मेरी डिस्पेन्सरीमे लाया और हँसी-खुशी उसने अपने दाँत निकलवाये।"

विमल भाई बोले—"फिर क्या हुआ"?

डा० जैन—"होता क्या, वह अपने हिसार चला गया और मै अपनी डिस्पेन्सरी जाने लगा। न खाँसी, न जुकाम, न फीवर।' मज़ेसे खाता-पीता हूँ और हट्टा-कट्टा बना आपके साथ रोज़ाना सैरको निकलता हूँ।"

मैने कहा—"भई प्रकाशबाबू! तुमने फिर फैमिली डाक्टरसे कुछ नही कहा?"

"हाँ, वह भी सुनो। १०-५ रोजके बाद हमारे डाक्टर साहब डिस्पेन्सरीकी तरफ निकल आये तो मैने कहा—"अमाँ डाक्टर! यह क्या मज़ाक

सूझा था, आपको ? बैठे-बिठाये टी०बी० डिक्लेयर कर दी थी। हम तो मर गये होते आपकी इस अदा पर।"

वह मेरी पीठ ठोकता हुआ बोला—"भई, बड़े खुशकिस्मत हो, जो दो-चार इन्जेक्शनमे ही सँभल ग े। वरना मैं क्या और मेरी बिसात क्या, जो तुम्हें मौतके चगुलसे बचा पाता। यह तो बुजुर्गोंके पुण्य प्रतापसे ही ईश्वरने करिश्मा दिखलाया है। मैंने तो जब सुना कि प्रकाशबाबू डिस्पेन्सरी जाने लगे हैं, तो फौरन दौड़ा हुआ मन्दिर गया और भगवान्‌के चरणोमे लोट कर यही बार-बार कहता रहा—"प्रभो! जैसी लाज तूने मेरी अब रखी है, वैसी सदैव रखना।"

"डाक्टरकी इस ढीठता पर मैं मन मसोसकर चुप हो गया।"

२१ अगस्त १९५४ ई०

प्रेमचन्दजी दर्शक गैलरीमें

सम्भवत १९३४-३५के आसपासकी मेरी चश्मदीद घटना है। अखिल-भारतीय-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन दिल्लीमे हुआ था। लालकिलेके सामने पत्थरवाले मैदानमे पण्डाल बना था। कुछ साहित्य-महारथी पधार चुके थे, शेष आ रहे थे। अधिवेशन-कार्य अभी प्रारम्भ नही हुआ था कि मचपर बैठे हुए प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति शीघ्रतासे दर्शक गैलरीकी ओर लपके और वहाँ खडे हुए मु शी प्रेमचन्दजीको कौली भरकर मचपर ले आये।

हुआ यह कि मु शीजी प्रवेश-टिकट निवासस्थानपर ही भूल आये थे। उनकी शक्लो-शबाहत एव वेष-भूषाको देखकर स्वयसेवक उनके मुशी प्रेमचन्द होनेका अनुमान नही कर सका, और मु शीजी अपने मुँहसे कहते भी कैसे कि भले आदमी जिसे देखनेको इतना जन-समूह एकत्र हुआ है, मै वही प्रेमचन्द हूँ। अगर कहते भी तो ईमानकी बात यह है कि स्वयसेवकको यकीन भी न आता। घरका सिला और हाथका धुला कुरता, मटमैली-सी धोती, अपाहिज से जूते पहिने, ऊबड-खाबड मूछोवाले, भीडके साथ पण्डालमे घुसनेवाले प्रेमचन्दको कौन प्रेमचन्द समझता ?

अत मु शीजी मुसकराते हुए गैलरीमे चले गये। अभी खडे भी न हो पाये थे कि इन्द्रजीने देख लिया और वे लपककर उन्हे मचपर लिवा ले गये।

१५ मार्च, १९५५ ई०

बातका शऊर

जिनके पास खुदकी अक्ल नही होती, वे दूसरोकी नकल करते हुए कभी-कभी बहुत उपहासास्पद होते हैं। कुछ नमूने दिये जाते हैं —

[१]

"क्यो साहब! इतनी सुबह-सुबह कहाँका इरादा किया?"

"भाई साहब! आपके साहबजादेका कल तिलक आयगा। उसीके लिए कुछ जरूरी सामान खरीदने निकला हूँ।"

"अच्छा भई मुबारक"

किसी बेअक्लेने भी यह गुफ्तगू सुन ली। मनमे कहा—'इस वाक्यका प्रयोग मैं भी करूँ तो मुझे भी मुबारकबाद मिले।' काफी प्रयत्न किया, परन्तु यह सुयोग मिलकर नही दिया। दुर्भाग्यसे एक रोज उसका युवा पुत्र मर गया। बस फिर क्या था, रोते हुए उन्ही मुबारकबाद देनेवाले सज्जनके आगेसे निकले। इनको रोता देखकर वे पूछ बैठे—

"क्यो भई खैर तो है? नसीबे-दुश्मनाँ कुछ सदमा पहुँचा है क्या?"

बेअक्ले तो इस अवसरकी ताकमे ही थे, सर पीटते हुए बोले—"आपका बडा साहबजादा मर गया।"

"आप बहुत बेहूदे मालूम होते हैं। भला ऐसी गाली भी कोई किसीको देता है?"

"अरे साहब बेहूदा आप हैं या हम? जब उन्होने अपने लडकेको आपका साहबजादा कहा, तब तो खूब-खूब मुबारकबाद दी, और जब हमने अपने बच्चेको आपका साहबजादा कहा तो बुरा मान गये। वाह साहब आप भी खूब आदमी हैं। मीठा-मीठा हप और कडवा-कडवा थू।"

[२]

किसी प्रतिष्ठित व्यक्तिके पुत्रके मरनेपर पत्रोमे छपा कि "अमुकके

इकलौते पुत्रकी मृत्यु हो गई"। किसी नकलचीको यह 'इकलौता' शब्द खब पसन्द आया। सुयोगकी बात थोडे ही दिनो मे उसका बाप मर गया। उसने अपने इष्ट-मित्रोको पिताकी मृत्युकी सूचना दी तो 'इकलौते पिता' का प्रयोग करके अपने मनकी साध पूरी की।

[३]

"हलो . . हलो . . . . आप कहाँ से बोल रहे है ?"

(कहना चाहिए "हलो—मैं अमुक नम्बरसे बोल रहा हूँ।")

"जी, म अपने मुँहमे बोल रहा हूँ, तिवारीजी से बाते करना है।"

"जी, वे तो पाखाना गये है" (कहना चाहिए "बाथ-रूममे हैं।")

"अच्छी बात है, जब वे पूजाघरमे जाये तो मुझे फोन कर लेगे, कहना ३६८४ से रमेश बोल रहा था।"

[४]

"आपकी तारीफ ?"

"जी ये मेरे बडे साले हैं।"

(कहना चाहिए—साहबजादेके मामा है। यदि बच्चा न हो तो कहना चाहिए मेरे अत्यन्त हितैषी रिश्तेदार है।)

[५]

"कहिये हुजूर, गर्मियोकी छुट्टियोमे कहाँ-कहाँ रहे ?"

"भाई साहब, पूरी छुट्टियाँ नैनीतालमे ही बिताई, अलबत्ता एक सप्ताह भुआली देखने मे भी लगाया।"

"भुआली सैनोटेरियमकी व्यवस्था कैसी है ?"

"खूब है साहब, आप एक बार किसी तरह भर्ती हो जाइये, फिर आपका वहाँसे आनेको जी नही करेगा। समयपर दूध, फल, मक्खन, भोजन, दवा आपको बराबर मिलेगे। सिनेमा, लायब्रेरी, आदिका भी समुचित प्रबन्ध है।

आप वहाँ रेडियो रख सकते हैं, शतरंज खेल सकते हैं ...... ।"

"क्षमा करना वहाँ मुझे जाना नहीं है, मेरा स्वास्थ्य तो आपकी दयासे बहुत अच्छा रहता है। मैंने तो यूँ ही पूछ लिया था।"

झेंपते हुए "मेरा मतलब यह नहीं था, मैं तो वहाँकी व्यवस्थाके बारेमें ही उदाहरण देकर बतला रहा था। आप नाहक बुरा मान गये।"

"अरे साहब, बुरा माननेकी आपने बात ही की। आप यूँ भी कह सकते थे कि वहाँका प्रबन्ध, वातावरण इतना अच्छा है कि लोग घरको भूल जाते हैं। मरीज़ रेडियो, शतरंज आदि रख सकते हैं, . वगैरह, वगैरह।

"भाई साहब, वाकई मुझसे भूल हुई।"

[६]

पति रातको दस बजे घर पहुँचे तो उनकी पत्नी चारपाई पर लेटे-लेटे ही बोली—"अजी, सुनो हो।"

"क्यों, क्या है ?"

"तुम्हारा दूध बिल्ली पी गई, तुम मेरा पी लेना"

"क्या बच्चोंसे फालतू बचने लगा।"

"तुम्हें तो हर बातमें मजाक सूझता है। मेरा मतलब तो यह है कि मेरे हिस्सेका पी लेना।"

"बेशक, मगर यही वाक्य पहिले कह दिया जाता तो क्या बुरा होता।"

[७]

मिस्टर सी० २०-२२ वर्षके कवी-हैकल जवान हैं। कल ही शादी करके छम-छम करती दुलहन लाये हैं। आज उनकी सुहागरात है। इष्ट-मित्रोंका ताँता मुबारकबाद देनेके लिए लगा हुआ है। सुयगप्पियोंके कुमकुमे उड़ रहे हैं। कहकहोंके फ़व्वारे छूट रहे हैं। बरजस्ता हाज़िरजवाबियोंसे यार-लोग हँसीके मारे दुहरे हुए जा रहे हैं।

इन्ही दोस्तोमे एक बीमा-एजेण्ट भी आये हुए है। उन्हे इस समारोहसे कोई दिलचस्पी नही। वे तो मौके-महलकी तलाशमे है कि कैसे और क्योकर नुक्तेकी बात कही जाय। इतनेमे ही एक मनहूस शक्लने रगमे भग करते हुए फरमाया—"अबे यारो, वह खबर भी सुनी, इटावेमे परसो सुहागरातके कमरे मे ही दूल्हाको साँपने डस लिया। बेचारा दुल्हनका मुंह भी न देख सका . . ।"

बीमा-एजेण्ट बीचमे ही बात काटते हुए बोले—"वह तो गनीमत हुई जो तीन माह पेश्तर मै उनका दस हजारका बीमा कर आया था, वरना.. . . ?"

"अरे साहब, इस मनहूस जिक्रको दफन कीजिये। कुछ तो मौका-महलका खयाल रखिये।"

"बुरा न मानिये, सच्ची बात हमेशा कडवी होती है। कल ये शादी करके लाये है। भगवान् न करे इनके दुश्मनोको कुछ हो। वरना यही शादियाने मातममे तब्दील हो जायेगे। बीमा एक पैसेका भी नही है। रिश्तेदार सब भाग खडे होगे, तब इस नई नवेली दुल्हनका क्या होगा ?. "

"अरे साहब, भगवान्के वास्ते चुप हो रहिये। बाबूजी सुन लेगे तो खडे-खडे निकलवा देगे।"

१९ मार्च १९५५ ई०

• • •

हमसे छेड़-छाड़ ठीक नहीं

मेरा डेढ वर्षका बच्चा हर्षवर्द्धन एकाएक ज़ोर से चीख उठा और बदहवास रोता हुआ मेरे पास आया तो उसकी उँगलीमें चींटा चिपटा हुआ था। मेरे छुडाने पर वह मर कर ही उँगलीसे अलग हुआ और मरते-मरते भी उँगलीसे रक्तकी धार बहा गया।

बच्चा तो थोडी देर सुबककर खेलने लगा, पर मैं अपनेम खो गया। सोचा कायर मनुष्योंसे तो यह जाँबाज चींटा ही लाख दर्जे श्रेष्ठ है। जिसने बच्चेके हृदयपर यह अंकित कर दिया कि बच्चू हमसे छेड-छाड ठीक नही, और अब वह भूलकर भी उन्हें नही छेडता।

१ दिसम्बर १९४६ ई०

मेरे लेखोंका मूल्य

सम्भवत १९२५ या २६ की घटना है। मेरे हाथमे एक रजिस्टर था, उसे मैं अपने एक परिचित पसारीको थोडी देरके लिए रख लेनेको कहकर किसी कामसे चला गया। आध घण्टेमें वापिस आकर देखता हूँ तो रजिस्टरसे कागज फाड-फाडकर सौदा बाँध कर ग्राहकोको दिया जा रहा है। मैंने घबराकर रजिस्टर उठाया तो, बूढे लाला सहज स्वभाव बोले—"अच्छा, यह तुम रख गये थे, मुझे खयाल ही नही रहा। खैर, कोई हर्जा नही हुआ। कोरा कागज एक भी नही छुआ, सिर्फ लिखे-लिखे ही फाडे है।"

लिखे हुए कागज़के जाया जानेका रज तो हुआ ही, मगर उनके भोलेपनने वह मजा दिया कि कुछ न पूछिये।

मार्च १९५२ ई०

वे पुराने राहो-रस्म

[१]

मेरी उम्र उस वक्त ७-८ वर्षकी रही होगी। मै अपनी नानीके साथ उसके मायके (अलीपुर ज़िला-मथुरा) गया तो हमको देखने-मिलने गाँवके प्राय सभी लोग आये। नानीको किसीने लाली, किसीने बहना, किसीने भूआ, कहकर कुशल-क्षेम पूछी। महिलाओमे-से वडी वूढियोने सरपर हाथ फेरा, हमजोलियाँ गले मिली और नई-नवेलियाँ पाँव लगी।

मुझे भाँजे राजा, भैया, वीरा कहकर गोदमें उठा लिया। उस स्वागत-सत्कार, लाड-प्यारको देखकर मालूम होता था कि गाँव-का-गाँव वर्षोसे हमारे दर्शनोका प्यासा था, परन्तु यह तो गाँवका आम रिवाज था।

गाँव-कसवोमें किसीके वारात आती तो वारातियोके ठहरनेके लिए अपने वैठकें और कमरे खाली कर देते। वारातियोसे सभी जातके लोग हँसी-ठट्ठा करते। किसी एकका दामाद गाँव भरका दामाद और किसी एकका साला जगत-साला और जगत मामा होता था। कोई जात हो उम्रके हिसावसे रिश्ता निभता था।

मै नन्ही धोबिनको माँसी कहा करता था, क्योकि वह माँके पीहरके गाँवकी थी। अपनी ननसालमे फतुआ कढेरेको नाना, सद्दीक चपरासी और विरजा ठठेरेको मामा और सुखिया मेहतरानीको मामी कहता था।

शूरू-शुरूकी बात है, होलीके दिन थे। सुखियाने मुझे तनिक छेड दिया। मैने चिढकर कहा—"चल चूहडी" नानीने सुन लिया, बोली—'क्यो रे वदतमीज, मामीसे यूँ हमकलाम हुआ जाता है? चल हाथ जोड।'

मै झल्लाकर बोला—"यह मेहतरानी होकर हमे क्यो छेडती है? हम तो इससे कुछ कहते नही।"

"तू कुछ नही कहेगा, तो क्या यह भी कुछ नही कहेगी, तू इसका भानजा जो है।"

"नही, हमें यह सब अच्छा नही लगता।"

"अन्य छेडती है, तब तो कुछ नही कहता, मुसकराता रहता है, फिर इससे क्यो चिढता है ?"

"चूहडे-चमारोंसे हमें छेड-छाड पसन्द नही।"

"खबरदार जो चूहडी-चमारी कहा। चिमटेसे जबान दाग दूँगी। अपनी माँ बराबरकीसे तू इस तरह बोलेगा ? क्या यही तेरे पडतने तुझे पढाया है। बिलाँद भरका छोकरा और गज़ भरकी जबान। मामीके अलावा तेने कुछ और कहा तो मुझसे बुरा न समझना।"

होली पर उस भागवान्ने मुझे खूब बनाया और मैं भी उसे रगसे तर किये बगैर न रहा।

[२]

मेरे मामाजीके लाला सूरजभान लँगोटिये यार थे। वे और उनकी पत्नी २०-२२ वर्षकी उम्रमे ही स्वर्गस्थ हो गये थे। उनके बाद मामाजी करीब १६-१७ वर्ष और जीवित रहे। मित्रकी ससुराल वालोने मामीको अपनी पुत्री और मामाजीको सदैव जँवाई समझा। हर दु ख-सुखमे आना-जाना रहा। यहाँ तक कि उनके मित्रकी सालियाँ जहाँ व्याही गई, वे लोग भी सगे साढूके समान उन्हें मान और स्नेह देते रहे। हम अग्रवाल जैन थे और वे खण्डेलवाल जैन। उन दिनो इन जातियोमें बेटी-व्यवहार नही था। फिर भी इतनी घनिष्ठता थी कि किसीको आभास तक न होता था कि ये सगे बेटी-जँवाई नही, बल्कि दूसरे हैं।

[३]

मई १९२२ ई० की बात है, मेरे बडे भाई (मातुलपुत्र) की बारात कोसीकलाँ (जि० मथुरा) से फरुकनगर (जि० गुडगाँव) गई। औरतोंसे

दूसरे हास-परिहास करना वृजमें एक आम रिवाज है, कोई बुरा नही मानता। इसी प्रथाके अभ्यस्त कुछ बारातियोने एक पनिहारिन पर आवाजाकशी की तो वह तो चुपचाप अपने मकानमें चली गई, परन्तु एक रास्ता चलता मुसलमान बारातियोसे उलझ पडा। उसका रगमे भग डालना बारातियोको नागवार गुजरा। वे झल्लाकर बोले—"तू कौन होता है बे, दालभातमे मूसलचन्द बननेवाला। हम हिन्दू तू मुसलमान, हमारा तेरा वास्ता क्या ?"

मुसलमान भी तैशमें आकर बोला—बेहूदो, इतना भी नही जानते। गाँवकी बहू-बेटियोकी इज्जत गाँव भरकी इज्ज़त होती है। अगर किसीने फिर आवाजाकशी की तो मारे लाठियोके कचूमर निकाल दिया जायगा।"

मैने बारातियोको समझाया कि यह वृज नही है, पजाब है। यहाँ आवाज़ाकशी गुनाह समझा जाता है। मेरे समझाने-बुझाने पर वे लोग वहाँसे खिसक तो लिये, परन्तु यह उनकी समझमे न आया कि एक मुसलमान हिन्दू औरतकी तरफदारी क्यो कर रहा था ?

[४]

फर्रुख नगरका जिक्र आते ही मुझे एक सस्मरण स्व० बाबू अजितप्रसादजी जैन एडवोकेट-द्वारा सुनाया हुआ और स्मरण आ गया। बातचीतके प्रसगमे आपने फरमाया—"हम लोग रहनेवाले तो देहली के है, परन्तु हमारे बाबा नसीराबाद छावनीमे सरकारी मुलाजिम थे। १८५७ के गदरके दिनोमें हमारी दादी, भूआ, पिता दिल्ली मे ही थे। गदर शान्त होनेके बाद वे लोग बैलगाडी-द्वारा नसीराबादके लिए रवाना हुए, क्योकि उन दिनो रेलोका प्रचलन नही हुआ था। रास्तेमें एक मुसलमान सिपाही मिला तो वह भी गाडी के साथ-साथ चलता रहा। वह फर्रुख नगरका रहनेवाला था। उसे जब यह मालूम हुआ कि दादी भी वही की बेटी है, तो बहुत खुश हुआ। रात हुई तो अकस्मात् चोरोने गाडीको घेर लिया। चोरोसे गाडीको घिरा

देख सिपाही बा-आवाज़ बुलन्द बोला—"गाडीको हाथ न लगाना वरना गोली मार दूंगा।"

चोरोंने सकेत किया, तू मुसलमान होकर क्यो बीचमें टाँग अडाता है, चुप रहा तो हिस्सेमे साझी कर लिया जायगा। सिपाहीने कहा—"मूर्खो, यह हमारे गाँवकी बेटी है, क्या बेटीका धन भी हजम होता है?" चोर भी उसकी बातसे प्रभावित हुए और वह चुपचाप चले गये।

सिपाही अपनी चौकीपर जाकर रुक गया। लेकिन उसने इस तरहका प्रबन्ध कर दिया कि दादी वगैरह सब सकुशल नसीराबाद पहुँच गये।

[५]

जब गाँवके रिश्तेकी बात चली है, तो एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख करनेका लोभ सवरण नही हो रहा है। यह वाकआ मुझे उर्दूके लब्धप्रतिष्ठ साहित्यिक एव शायर हजरत 'असर' लखनवीने १७ जनवरी १९५५ को अपनी जबाने-मुबारकसे सुनाया था, जबकि मैं लखनऊके काश्मीरी मुहल्ले में उनके दरे-दौलतपर जियारत करनेके लिए गया था। न जाने कैसे आपसके पुराने राहो-रस्म पर जिक्र चल निकला तो आपने एक ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख किया। खेद है कि मैं घटना-सम्बन्धी नाम-स्थान तो भूल गया, परन्तु उसका सार स्मरण है।

नवाबी शासनकालमें एक गाँवने सामूहिक रूपसे सरकारको लगान देना बन्द कर दिया तो उस विद्रोही गाँवको जेर करनेके लिए फौजकी एक टुकडी नवाबने रवाना की। उस फौजी टुकडीके नायक एक हिन्दू थे। गाँवके बाहर फौजका जहाँ पडाव था, वहाँ एक युवती आई और सन्तरीसे जाकर बोली—"सुना है, फौजके साथ हमारे मामा भी आये है।"

सिपाहीने मामाका नाम जानना चाहा कि अकस्मात् सेनानायक खेमेंमे बाहर निकल आये और सन्तरीको एक युवतीसे महवे-गुफ्तगू देखकर पूछा—"यह कौन औरत है, यहाँ क्यो आई है?" सन्तरी कुछ जवाब दे कि वह युवती बोली—"मामा, शायद आपने मुझे पहिचाना नही। मेरी माँ आपके

कहारकी लडकी थी, मैं छुटपनमे अक्सर उसके साथ लखनऊ आती-जाती थी, तभीसे मैं आपको जानती हूँ। यहाँ मेरी ससुराल है।"

इस भाँजीको दो मीठे शब्द कहकर सेनानायकने विदा कर दिया, परन्तु फिर सोचमे पड गये। अगर गाँवका मुहासरा करता हूँ तो मुमकिन है लडाईमे इसका पति भी मारा जाए। तब क्या मैं अपनी इस मुँहबोली भाँजीके वैधव्यका पातकी नही वनूँगा ?"

सेना वगैर विद्रोह दवाये लखनऊ वापिस लौट गई। सेनानायक नवावके समीप जाकर वोला—"गुलामने हुक्म-उदूली की है। मैदाने-जगसे पीठ दिखाई है, आप मुझ वुजदिलको तोप दम करा दीजिये।"

नवावने वास्तविक स्थिति मालूम की तो फरमाया—"वह तुम्हारी ही नही, हमारी भी भाँजी है। इस रिश्तेकी यादगारमें हम हमेशाको उस गाँवका लगान माफ करते है।"

[६]

न अव वादशाहका नाम स्मरण है, न उस ब्राह्मणीका, परन्तु ऐतिहासिक घटना है, और जिस मुस्लिम इतिहासमे यह घटना पढी थी, वह ग्रन्थ भी मेरे पास नही है। धुँधली-सी जो याद है, वही अकित किये दे रहा हूँ।

लगभग १७वी शताब्दीकी घटना है कि दिल्लीके तत्कालीन निर्वल एव अशक्त मुगल वादशाहको कुछ कुचक्रियोने धोखेसे दिल्लीके फीरोजशाह कोटलेमे ले जाकर मार डाला और उसे राजघाटकी तरफ फेक दिया। यमुना-स्नान करके उस ओरसे आती हुई एक ब्राह्मणीने मृतक वादशाहको देखा तो उसकी सूचना किले तक पहुँचा दी।

उस कृतज्ञताके फलस्वरूप वादशाहके उत्तराधिकारी वादशाहने ब्राह्मणीको वहुत आदर दिया और उसकी लडकीको वहनकी तरह माना। रक्षावन्धन, दशहरा, भैयादूज पर अपनी इस वहनको किलेमे वुलाता और भेट आदि देकर आदर-स्नेह प्रकट करता था।

२३ अगस्त १९५५ ई०

चढ़ते सूर्यको नमस्कार

मैं एक ऐसे साहित्यिकको जानता हूँ जो आज हिन्दी-साहित्यमे प्रसिद्ध कहानी-लेखक, कवि और विचारक हैं। एक सुप्रसिद्ध मासिक पत्रके सफल सम्पादक है। उनकी रचनाओके लिए पत्रकार मुँह धोये रहते है। पर सन् ३२ मे जब वे बन्दी थे, उन्हे साहित्य-ससारमे कोई जानता न था। उनकी अप्रकाशित कहानियोके सग्रहको एक प्रसिद्ध प्रकाशकने यह कहकर लौटा दिया था कि अभी उन्हे १०—५ वर्ष कलम पकडना सीखना चाहिए। सौभाग्यकी बात वह कहानी-सग्रह मुझे भी देखनेको मिला, और मुझे वे बेहद पसन्द आया। मेरी अभिलाषा थी कि यह सग्रह किसी न किसी तरह प्रकाशित होना ही चाहिए। पर,मेरे पास ऐसे साधन नही थे। न तो मेरा स्वय किसी पत्र-सम्पादकसे विशेष परिचय था और न पुस्तक-प्रकाशकोसे। और कुछ था भी तो भय था कि जो लेखक षड्यन्त्रमे गिरफ़्तार है, उसकी कृति कौन छापेगा? मैं बडी द्विविधामे था। रचनाएँ उत्तम है; छपनी चाहिएँ, और मै छपवा दूँगा, इसी आश्वासन पर वे मैने प्राप्त की थी। यह न छपी तो ये अनमोल रचनाएँ तो नष्ट होगी ही,साथ ही मेरी भी हँसी होगी। इसी चिन्तामे व्यग्र कापीके पृष्ठ इधर-उधर पलट रहा था कि एक ख्यातिप्राप्त कहानी-लेखक जेलसे छूटनेपर मुझसे मिलने आये। वार्तालापके दौरानमे उन्होने भी वे कहानियाँ देखी, उन्हे बेहद भाई। मुझसे उन्होने लेखकका परिचय पूछा। बतानेपर उन्होने मुझसे वह कापी ले ली और अपने परिचित सम्पादकोके पास अपनी ओरसे एक नोट लगाकर प्रकाशनार्थ भेज दी। एक-दो कहानीका प्रकाशित होना था कि हिन्दी ससारमे धूम मच गई। जिन पत्रोने उनकी कहानियाँ वापिस की थी, जिस प्रकाशकने कलम पकडना सीखनेकी सलाह दी थी, वे कहानियोके लिए उनके पास चक्कर काटने लगे।

और जिन ख्यातनामा कहानी-लेखकके परिचय देने पर वे इतने बढ़े, वे ख्यातनामा कहानी-लेखक स्वय प्रारम्भमे प्रसिद्धि प्राप्त करनेसे पूर्व प्रकाशकोके यहाँ भटकते फिरते थे। उनके पास प्रकाश था, पर अन्धे सम्पादको और प्रकाशकोको दिखाई न देता था। उनकी वह कहानी जिससे वे एकदम इतने ऊँचे उठे, 'चाँद' के फाँसी अक मे न छापकर बैरग लौटा दी गई थी। जिस पुस्तकपर पुरस्कार मिला, एक प्रकाशकने वह महीनो रद्दीमे डाले रक्खी थी। जब वे लिखते ज्यादा थे और छपता बिल्कुल नही था, तब लोग उनकी भाषा, भाव और मुहावरोमे अशुद्धियोके सिवा और कुछ न पाते थे। और आज वही चीजे छप गई तो अशुद्धियाँ देखने-वाले उनमे महानताका दर्शन करने लगे।

फरवरी १९४० ई०

• • •

थर्ड क्लासका सफ़र

हाँ तो साहब यह उन्ही दिनोकी बात है, जब हम और महात्मा गाँधी एक ही क्लासमे सफर किया करते थे। हमारे साथ महात्माजीका नाम सुनकर चौंकिये नही। हम दोनो ही बडे आदमी हुए है। यदि थोडा-बहुत अन्तर माना भी जाए तो यही कि वे प्रथम श्रेणीके अधिकारी होते हुए भी जीवन पर्यन्त तृतीय श्रेणीका आनन्द लेते रहे और हम थर्डक्लास होते हुए भी फर्स्ट क्लासके स्वप्न देखते रहे।

यह बात दूसरी है कि जिस ट्रेनसे महात्माजी सफर करते थे, हमने उस ट्रेनसे सफर करनेकी हिमाकत कभी नही की। जान-बूझकर ओखलीमे सर देनेका शऊर हमे कभी नही आया। उनकी मेल ट्रेन भी बैलगाडी बन जाती थी। रात हो या दिन हर स्टेशन पर नारे-बाजोकी भीड रहती थी। सामान उचक जानेका हर वक्त खतरा रहता था। इसलिए हमने हमेशा इतर ट्रेनोसे सफर किया।

मसजिदके जेर साये किरायेका मकान लेकर रहने पर मिर्जा गालिब जब अपनेको खुदाका पडौसी समझ सकते है।[1] लार्ड किचनरके साथ एक ही हाथी पर बैठने वाले उनके महावत और बाडीगार्ड फख्रिया बयान कर सकते है कि—"हमारा और लाटसाहबका जुलूस दरबारके मौके पर एक ही हाथी पर निकला था।" पण्डित जवाहरलाल नेहरूके बन्दी जीवनका समकालीन महतर भी जब यह कह सकता है कि हम और जवाहर भाई साथ-साथ जेल काटते रहे है। तब साहब हम यह कहनेसे क्यो बाज आये कि हम और महात्माजी एक ही क्लासमे सफर करते रहे है। खासकर ऐसे जमानेमे जब राम-नाममे अधिक गाँधी-नामकी लूट मची हुई है।

किसीने चूल्हेकी राख रजत-पात्रमे भरकर उसे गान्धीभस्म कहकर

---

१. मसजिद के ज़ेर साये इक घर बना लिया है।
यह बन्द-ए-कमीना हमसाय-ए-खुदा है॥

रसायन वना ली । किसीने अपने मॉके उखड़े हुए दॉतको गाँधी-दात घोषित करके ख्याति पा ली। किसीने परिहास खोज डाले, किसीने चमत्कार गढ डाले, किसीने रो-धोकर पत्र एकत्र कर डाले। किसीने डॉडी और नोआखाली यात्राका सम्बन्ध उसी तरह भिडा लिया, जैसे रेवती चमार, अपनेको वीरवरका मौसेरा भाई समझता था। क्योकि वीरवरकी घोडी जिस जगलमे चरती थी, उसी जगलमे रेवती घास खोदा करता था और वीरवरकी घोडी उसे मातृवत् स्नेह करती थी।

जव महात्माजीके नामकी इस कदर लूट मची हुई है कि हर कॉग्रेसी ५ मिनटके भाषणमे ५० वार उनका नाम जपता है, तव हम यथार्थ वात भी न कहे कि हम और महात्माजी एक ही क्लासमे सफर किया करते थे।

महात्माजीके वारेमे तो हम कुछ नही वताना चाहते, परन्तु हम थर्डमे सफर अत्यन्त सावधानी से किया करते थे। जिस डिव्वेमे पठान होते, हम सडास समझकर पास नही फटकते थे। पुलिस-फौजके डिव्वेमे बैठना उसी तरह शानके खिलाफ समझते थे, जैसे मत्रिमण्डलमे सम्मिलित होना समाजवादी समझते है। अपना लक्ष मारवाडी-वगाली वाहुल्य डिव्वेकी ओर ही विशेष रहता। प्रारम्भमे कॉय-कूँ, मोशाय, भालोके आशीर्वचन मिलते, धीरे-धीरे सब प्रकारकी सुख-सुविधाएँ मिलती। मतलव यह कि मुसलिम लीगी ढगसे हर खतरोसे वचकर फोकटमे ही, पाकिस्तान हथियानेके समान हम भी सीट हथियानेका खयाल रखते। न दामनपर किसी किस्मकी ऑच आने देते न कोई जहमत उठाते, मगर सफर ठाटसे करते।

१९२५ ई० की शरद् ऋतुकी रातको जयपुरसे आगरे आनेके लिए मार्गमे वॉदीकुईपर रेल वदलनी थी। सोभाग्यसे ऐसे डिव्वेके दर्शन हो गये, जिसमे सीट तो कोई रिक्त न थी, सभी लम्वी ताने हुए थे, परन्तु दरवाजे पर कोई पहरेदार न था। निशक उसमे प्रवेश करके अपने वक्सपर विस्तरा रखके हम उसपर इस शानसे वैठ गये, गोया कोई हिज हाईनेस ऊँट पर

बैठा हुआ हो। अभी बैठे हुए ब-मुश्किल तमाम २–४ मिनट ही हुए थे कि हमारी यह शान एक पोडशवर्षीयासे न देखी गई। कहाँ तो वह पूरी बर्थ पर बकौल 'असर' लखनवी यूँ महवे-ख्वाब थी—

दमे-ख्वाब है, दस्ते-नाजुक जबीं पर।
किरन चाँदकी गोदमें सो रही है॥

और कहाँ साहब उसने हमे देखकर पाँव उसी तरह समेट लिए, जैसे हड़तालियोको देखकर व्यापारी दुकान समेट लेते हैं। हम गावदी सकेत न समझे और जब क्या, कभी भी न समझे। बकौल 'सबा' अकबराबादी—

गलत फहमियोंमें जवानी गुजारी।
कभी वह न समझे, कभी हम न समझे॥

तो उसने हिनाई हाथसे अपनी बर्थपर बैठनेका इशारा किया। जी, हाँ वही हिनाई हाथ, जिनके सम्बन्धमे 'रियाज' खैराबादीका यह शेर मौजूँ हो रहा था—

नाजुक कलाइयोंमें हिनाबस्त मुट्ठियाँ।
शाखोंपै जैसे मुँह बँधी कलियाँ गुलाबकी॥

एक पोडशवर्षीयाका सकेत आधीरातको और वह भी अपने पास बैठनेके लिए, दिल बल्लियो उछलने लगा। मगर हम भी यूँ ही नही थे कि जरा अच्छी शक्ल देखी और रेशाखत्मी हो गये। अरे साहब हम तो हम थे, चाहतका इशारा पाकर तो गधी भी मगरूर हो उठती है। हमें भी अपने मुताल्लिक गलतफहमी होने लगी। कभी हम अपने बाजुओको और कभी अपने सीनेको देखने लगे। मगर वही गन्ने-से बाजू और वही हवा निकली हुई ब्लेडर-जैसा सीना। न सर पर जुल्फें न मुँहमें पान, कपडे भी खद्दरके मैले। फिर हे भगवान् यह मामला क्या है। खयाल हुआ कि शायद हमारी सादगीने गजब ढाया हो। बकौल गालिब—

इस सादगीपै कौन न मरजाये ऐ ख़ुदा ।
लड़ते हैं, मगर हाथमें तलवार भी नही ।।

हमने इरादतन दूसरी जानिब मुँह फेर लिया तो क्या देखते हैं साहब, कि उस तरफ एक गबरू जवान सोया हुआ है। हमारे मुँह फेरते ही वही हरकत उसने भी दोहराई। हमे असमजसमे घिरा देख उसने कहा—

'आप उधर नही बैठते हैं तो मेरी तरफ बैठ जाइये। बहरहाल आपको इधर-उधर बैठना लाजिमी है। मैंने तकल्लुफन अर्ज किया—"आप लोग आराम फरमाये, न जाने कितनी दूरसे चले आ रहे हैं। मेरा क्या है, सुबह उतर जाऊँगा।"

युवक बोला—"आप बैठे रहेगे तो हम दोनोको नीद नही आयेगी।"

अब हम घबराये कि आखिर माजरा क्या है? गो हमारी शक्लो-शबाहत दर्शनीय नही, मगर उच्चको-जैसी भी नही। फिर इनके पास सामान भी कुछ ऐसा नही, जिसके उचक जानेका भय हो, फिर नीद न आनेका कारण क्या है? हम साहस करके पूछ ही बैठे—"नीद न आनेका कारण?"

अब युवतीने गुलफिशानी की—"एक साथी बैठा रहे, दूसरा सोता रहे, ऐसा भी कही होता है? निगोडी नीद न हुई, बेहया ।"

उसने कुछ इस अन्दाजसे कहा कि मालूम होता था कि चमेलीके फूल झड रहे हैं। हमारी अब क्या बिसात जो हुक्मउदूली करते। उन्हे सुलानेकी खातिर हम भी आधी सीट पर लेट कर नीद लानेका उपक्रम करने लगे। मगर नीद कहाँ, हम तो 'साकिब' लखनवीके इस शेरको गुनगुनाते हुए करवट बदलते रहे—

लूटने वाले हमारी नीद के।
किस मज़ेसे रात भर सोया किये ।।

उसका रग-रूप यूँ समझिये कि जैसे अँगूरके रसमे थोडा सिन्दूर घोल दिया हो। जवानीकी चौखटपर पाँव रखे उसे विलम्व नही हुआ था। फिर भी सुवह उठकर देखा तो लोग उसे ऐसे निहार रहे थे, जैसे अपनी परवान चढती वहन-वेटीको देख रहे हो। उसके रोम-रोमसे सौन्दर्य झाँक रहा था, परन्तु मादकताका अभाव था। उसे सभी देख रहे थे, परन्तु घूर नही सकते थे। उसके मुखपर कुछ ऐसा प्रभावशाली लावण्य था कि कुत्सित कल्पना हो ही नही सकती थी। जव वे उतरे तो डिव्वेमें वैठे हुए एक पढे-लिखे संन्यासीने उन्हें प्लेटफार्म पर एक साथ खडे करके उनके दीर्घजीवनके लिए आशीर्वाद दिया। मैने भी 'असर' लखनवीका यह शेर मनमें दोहराया--

अव मै समझा मुराद जन्नतसे।
आप जिस राहसे गुजर जायें॥

२४ अगस्त १९५५ ई०

• • •

एक वे भी मुसाफ़िर थे

सन् १९३३ ई०की शरद् ऋतुकी बात है, मै 'राजपूतानेके जैन-वीर' नामक अपने इतिहासग्रथके सम्बन्धमे कुछ अनुशीलन करनेके लिए दिल्लीसे उदयपुर जा रहा था कि अजमेरमें ख्वाजा चश्तीके मजारका उन दिनो उर्स होनेके कारण ट्रेनमे तिल रखनेको स्थान न था। कई चक्कर काटनेके बाद गार्डके डिब्बेके नजदीक एक छोटे-से डिब्बे पर नजर गई तो, उसमे सिर्फ एक हजरत नजर पडे। ऊपर-नीचे झाँककर देखा, न लेडीज, न रिजर्व, न ओनली पुलिस-फौज, न आइस कम्पार्टमेण्ट लिखा था।

झिझकते हुए अन्दर गया तो खयाल आया कि कही रातको किसी स्टेशन पर कटने वाला डिब्बा न हो। इस खयालसे पूछा तो बोले---"आप इतमीनानसे दूसरे बर्थ पर बिस्तरा जमा लीजिये, और देखिये साहब बुरा न मानिये अगर और मुसाफिर आये तो उन्हे अपनी बेचपर बिठाते जाइये। मै अपनी बेच पर सोया रहूँगा। बगैर सोये मेरे सरमे दर्द हो जाता है और साहब मुझे जयपुर पहुँचकर कल ऑफिस भी अटेण्ड करना है।"

मैने बहुत मुनासिब कहकर दूसरी बेच पर बिस्तरा लगाया। लेटकर उन्हे गौरसे देखा कि कही हजरत सोतेमे हमला तो न कर बैठेगे। मगर इसकी उनसे कोई आशा नही थी। निहायत लतीफ, नाजुक मिज़ाज थे।

रातको नीद उचटी तो देखा उनके बिस्तरेपर दो व्यक्ति और ऊँघ रहे है और स्वय सिकुडे हुए खिडकीसे लगे बैठे है। मैने उन्हे इस स्थितिमें देखा तो अर्ज किया---"वाह साहब, यह अमानतमे खयानत कैसी? आप ही के कौलके मुताबिक इस माल पर तो मेरा हक है?"

सुनकर आप सिर्फ मुसकराये, जवाब न पाकर मै फिर खर्राटे लेने लगा। फिर नीद खुली तो देखा दो रेलवे बाबू खडे हुए है। मैने पॉव समेटते हुए कहा---"अरे साहब, आप वहॉ खडे क्यो है? यहॉ बैठिये।"

वे केवल "थैंक-यू" कहकर पूर्ववत् खड़े रहे। मैंने फिर अर्ज किया—"आप यहाँ आकर बैठिये, हम लेटे रहें, और आप खड़े रहें, यह तो सरीहन जुल्म है।"

वे मुसकराकर बोले—"आप हमारी रेलमें सफर कर रहे हैं, हमारे मेहमान हैं। आप सोते चलें और हम आपको देखकर मुसकराते रहें, यही हमारे लिए शोभनीय है।"

आग्रह करनेपर भी न वे बाबू बैठे और न मेरे पास उन नाजुक मिजाज हजरतने अपने पडौसियोंको आने दिया। मुझे भी नींद फिर क्या आनी थी। पडा-पड़ा हालीके इस शेरको गुनगुनाता रहा—

जानवर, आदमी, फरिश्ता, खुदा।
आदमी की हैं, सैकड़ों किस्में॥

२० मार्च १९५५ ई०

प्रतिज्ञा न लेनेकी प्रतिज्ञा

पहाडी-धीरज दिल्लीमे एक हजरत रहते हैं । बहुत हँसमुख और मिलनसार। सरके बाल सफेद हो गये है, एक-दो दॉत भी दगा दे गये हैं। मगर दिलकी जौलानी बरकरार है। बहुत चुहलबाज़ है। बात-बातपर फब्तियॉ कसते है। जिस दिन किसीको १०–५ गालियाँ न दे ले और न सुन ले तो उस दिनको वे मनहूस समझते है। कोई कुछ भी कह ले बुरा नही मानते। मुसकराते रहते है। जवानी उनकी रगीन रही है। वालिद कमाते थे और वे दोनो हाथोसे लुटाते थे। उनका यकीन था कि रिशवतकी कमाई लुटाने-से ही बढती है। वालिद बुजुर्गवारने काफी समझाया, मगर उनपर कोई असर नही हुआ।

सयोगसे पहाडी-धीरजपर एक जैन-साधुका चातुर्मास हुआ। उनके तप-तेजकी बहुत ख्याति थी। वाणीमें चमत्कार था कि जिस किसीको जो भी प्रतिज्ञा लेनेको कहा नतमस्तक होकर स्वीकृत कर ली। उनके बुजुर्गवारने भी एक रोज एकान्तमे साधुके चरण पकडकर अपनी वेदना बखेर दी—"महाराज एक ही लडका है, वह भी दारा-सुराके चक्करमे फँसा हुआ है? हमारा उद्धार कीजिये प्रभो।"

महाराजके आश्वासन देने पर उन्होने चरण छोडे। हजरत भी महाराजके दर्शनार्थ आते-जाते थे। एक रोज़ एकान्त देखकर महाराज कुछ कहना ही चाहते थे कि आप बोले—"महाराजजी, शर्मिन्दा न कीजिये। मै पहिले ही प्रतिज्ञा ले चुका हूँ।"

साधु उनके सरल स्वभाव और धार्मिकतासे गद्गद हो गये। अनेकानेक आशीर्वाद दिये। जानेके बाद पिता आये तो साधु बोले—"भव्य! तुम बहुत भाग्यशाली हो, जो ऐसा पुत्ररत्न पाया। तुम्हारा पुत्र सच्चा सम्यक्ती है। मेरे सकेतसे पूर्व ही प्रतिज्ञा ले ली।"

पिता आश्वस्त होकर घर चले गये। मगर हजरतका कही पता न था। वे हस्ब-दस्तूर रातके चार बजे आये। बुजुर्गवारने सर पीट लिया। सुबह आँखोमें आँसू भरकर साधुको स्थिति बतलाई, तो साधु भी आश्चर्यमें पड गये। पहिले तो उन्हें विश्वास ही न हुआ कि मन्दिरमें और वह भी साधुके सामने ली हुई प्रतिज्ञा कोई कैसे तोड सकता है ? यह उनके जीवन-में पहली घटना थी।

एक रोज महाराजका उनके घर आहार हुआ। आहारके बाद नियमा-नुसार साधुने उपदेश दिया, फिर परिवारके सदस्योको कोई न कोई प्रतिज्ञा दिलाई। उनकी तरफ देखकर बोले—"तुम्हे क्या प्रतिज्ञा दिलाये, जो मन्दिरमें ली हुई प्रतिज्ञा भी तोड देते है।"

हजरत हाथ जोडकर बोले—"महाराज मैने कोई प्रतिज्ञा नही तोडी। प्राण भले ही निकल जाँये, परन्तु ली हुई प्रतिज्ञा नही तोड सकता।"

"क्या तुमने उस रोजके बाद सुरा-पान नही किया ?"

"जरूर किया, रोज करता हूँ ?"

"फिर तुमने मुझसे उस रोज क्यो कहा कि महाराज शर्मिन्दा न करे। मै पहिले ही प्रतिज्ञा ले चुका हूँ।"

"महाराज उस प्रतिज्ञापर दृढ हूँ, दुनिया इधर-से-उधर हो जाए, यहाँ तक कि आप भी तोडनेको कहे तो न तोडू।"

"विचित्र आदमी हो, यह भी कहते हो कि शराब रोज पीता हूँ, और यह भी दावा हे कि प्रतिज्ञा नही तोडूँगा। मेरी समझमें यह पहेली नही आई।"

हजरत चुपके-से बोले—"महाराज मैने यह कब कहा था कि सुरा-दाराका त्याग करता हूँ। मैने तो यही निवेदन किया था कि प्रतिज्ञा ले ली है।"

"फिर किस चीजकी प्रतिज्ञा ली थी ?"

"महाराज, प्रतिज्ञा न लेनेकी प्रतिज्ञा ली थी और यह प्रतिज्ञा मै कदापि नही तोडूँगा।"

३ अक्टूबर १९५५ ई०

भावनाके अनुरूप

मनुष्य अपनी भावनाके अनुरूप कर्म-फल भोगता है। एक ही छुरीसे डाक्टर ऑपरेशन करता है और घातक कातिलाना हमला करता है। डाक्टरके हाथसे मरीज मर जाता है, किन्तु अकस्मात् किसीके आ जानेसे घातक आघात भी नही करने पाता और लोगो-द्वारा पकड लिया जाता है। रोगीके मर जानेपर भी डाक्टर निर्दोष समझा जाता है और घातकसे जाहिरा आघात न होने पर भी वह दण्डनीय होता है।

दिल्लीमें एक नाईने मुझे आप बीती सुनाई थी, वह मानसिक चिन्ताओमें पडकर पागल हो गया था। उसके पीछे बच्चोके झुण्ड रहते थे, कोई उसपर थूकता, कोई चिढाता, और कोई ककर-पत्थर मारता था। कई वर्ष तक वह इसी अवस्थामे रहा। दैवयोगसे बच्चे उसे छेड रहे थे कि एकने मनो-रजन-स्वरूप उसकी ओर पत्थर फेका और वह उसके सरमे लगा। पत्थरके आघातसे उसके सरसे रक्त बहने लगा और वह वेदनाके कारण बेहोश हो गया। होश आनेपर उसने अपनेको और ही रूपमे देखा। उसके सिरसे गन्दा रक्त निकल गया और वह अच्छा हो गया। लेकिन वह ईट मारने वाला प्रकट रूपमे पागलका भला करने पर भी दोषी हुआ, क्योकि उसके भाव हितैषी न होकर हिंसक थे।

मई १९३६ ई०

• • •

जमा-खर्च

हमारे मुहल्लेमे एक बुजुर्ग थे। खरी-खरी कहनेमे किसीसे नही चूकते थे। उनसे बात करते हुए लोग घबराते थे। एक रोज एक युवक रोते हुए आकर बोला—"ताऊजी, लाला काल कर गये।"

आपने अन्यमनस्क भावसे जवाब दिया—"अच्छा हुआ।"

युवक सकतेमे रह गया कि यह इन्होने क्या कहा? मेरे पिता मर गये, सहानुभूति प्रदर्शित करनेके बजाय कहते है—"अच्छा हुआ।" मनोव्यथा दबाकर बोला—"अभी रातको ले जानेका इरादा है।"

वे उसी तरह बोले—"सुबह भी ले जा सको तो गनीमत है।"

"यह क्यो ताऊजी?"

"भाई अपना खाता देख लो। किसीकी अर्थीको कन्धा दिया होगा तो, उन्हे भी कन्धा देनेवाले मिलेंगे। वरना झल्लीवालोसे लाश उठवानी पडेगी।"

और सचमुच उनका कहा सत्य हुआ।

मुहल्लेके दो-चार रईसोकी आदत थी कि मुर्दनीमें साथ न जाकर कारो-ताँगोसे सीधे श्मशान घाट पहुँच जाते थे। न अर्थीको कन्धा देते न हाथ लगाते थे। उनका यह व्यवहार लोगो को खटकता तो था, परन्तु कहनेका साहस नही होता था। एक रोज उक्त बुजुर्ग उन्हे सुनाकर कहने लगे—"भाई अबकी इनके यहाँ किसीकी मौत हुई तो हम भी टैक्सीमें श्मशानघाट आयेंगे।

तबसे उन रईसोने मोटरो-ताँगोमें श्मशान घाट जाना छोडा।

४ अक्टूबर १९५५ ई०

साँझ-सकारे अँधेरे-उजारे बैठते-उठते आते-जातोंसे

जो सुना

दोज़खमें भी फ़रिश्ते

पं० उग्रसेन गोस्वामी बी. ए एल-एल. वी रावलपिण्डी इलाकेके सैयद कसरा कसबेके रईस एव जमीदार है। वे ८-१० वर्षसे डालमियानगरमें रहते है। किन्तु भारत-विभाजनसे पूर्व उनका समूचा परिवार पाकिस्तानमे ही था। साम्प्रदायिक उपद्रवोमें उनकी भरी-पूरी जमीदारी उजड गई। गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ धूल-धूसरित हो गईं। वाग-वगीचोपर दूसरोके कब्जे हो गये। खैरियत यह हुई कि उनका परिवार सैयद कसरामें न होकर पाकिस्तानी अन्य सुरक्षित इलाकेमे था।

यह मार्च १९४७की घटना है। तब तक पाकिस्तानके निर्माणकी कोई निश्चित रूप-रेखा नही थी। लोग यही समझते थे कि यह एक आकस्मिक आँधी है, इसके शान्त होते ही फिर पूर्ववत् हिन्दू-मुस्लिम रहने लगेंगे।

साम्प्रदायिक उत्पातोका वेग तनिक शान्त हुआ तो गोस्वामीजी अपने वडे भाईके साथ अपने उजडे आशियानेको देखनेकी इच्छासे छद्मवेपमें गये। जानेका प्रवल कारण एक यह भी था कि भाञ्जी एव भतीजियोकी शादीके लिए मॉने काफी सोना गुप्त स्थानमें गाड रखा था। उसीकी खोजमें अनेक जोखिम उठाकर ये वहाँ पहुँचे। कसबेके स्टेशन पर दिनके १०॥ बजे उतरे तो एक हू का आलम नजर आया। न पहिली-सी रौनक, न कोई उतरनेवाली सवारी और न ही बाहर ताँगा। सहमे हुए-से स्टेशनसे पैदल ही खेतोकी पगडण्डी होते हुए गाँवोको रवाना हुए। रास्तेमे दोनो ओर पके हुए गेहूँकी वालियोंसे ऐसा मालूम हो रहा था, गोया खेत सोना उगल रहे है। जिस फसलको काटनेके लिए किसानोकी टोलियाँ होती थी, उसे देखनेको भी आदमी मयस्सर न थे। औरतोका उन्मुक्त नृत्य, युवकोकी ताल, वच्चोकी किलकारियाँ तो कुजा रास्ते भर आदम मिला न आदमजाद, न उसकी गन्ध। मालूम होता था कि किसी फकीरकी बद्दुआसे सारा इलाका उजाड

हो गया है। हाँ कुछ पशु स्वच्छन्द भावसे विचरते नज़र आ रहे थे। जिस इलाकेका चप्पा-चप्पा नृत्य करता हुआ-सा दिखाई दिया करता था, उसी इलाकेको किसकी नज़र खा गई कि दोपहरको भी इन्सानकी सूरत देखनेको तरस गये। इसी हौलनाक आलममें चले जा रहे थे कि एक परिचित वयोवृद्ध सामनेसे आता दिखाई दिया तो इन्होंने तपाकसे कहा—'चचा सलाम।'

वृद्धने आँखोंपर हाथ रखकर पहिले इन्हें गौरसे देखा, फिर पहिचाननेपर सरकी पगडीसे मुँहको छुपाते हुए जवाब दिया—"बेटा खुश रहो, खुदा तुम्हें सलामत रखे।"

"चचा हमें देखकर मुँहपर कपड़ा क्यों डाल लिया? क्या हमारी सूरतोंसे इस कदर नफरत हो गई? हम तो तुम्हारे वही बच्चे हैं।"

"हम तुम्हें मुँह दिखानेके काबिल नही रहे बेटे। बकौल किसीके—

परदेकी और कुछ वजह अहले जहाँ नही।
दुनियाको मुँह दिखानेके काबिल नही रहे॥

तुम्हारी गैर मौजूदगीमें हिफाजत करना तो दूर, अपनी आंखोसे उजड़ते हुए देखा किये।

आशियाँ उजड़ा किया, हम नातवाँ देखा किये

पुश्तैनी राहो-रस्म, अखलाको-मुहब्बत सब खाकमें मिला डाले, सुरगमें भाई साहब[1] न जाने कितनी लानतें हमको दे रहे होंगे? हम तुम्हें मुँह दिखानेके काबिल अब नही रहे।"

"नही, चचा ऐसा न फरमायें। हम आपके वही बच्चे है, जो आपकी गोदियोमें खेलकर परवान चढे है। आप अपना जी हलका न कीजिये। हमारे सर पर शफक्कतका हाथ फेरिये। आप जैसे बुजुर्गोंकी दुआसे फिर वही दिन आ जायेंगे। यह तो एक मज़हबी तूफान था, जो आया और निकल गया।"

---

१. गोस्वामीजीके स्वर्गीय पिता।

"आमीन, ख़ुदा तुम्हारे यकीनकी आन रखे। मगर मुझे तो आसार अच्छे नजर नही आते। जब तमाम कुओमे ही भग डाल दी गई हो, तब जुनून उतरनेकी क्या उम्मीद ?"

किसी तरह बागके मालीको पता चला तो उसका जवान बेटा नूरा दौडा हुआ आया और अपने आकाओको देखकर टप-टप रोने लगा। उसे पुच-कारकर गोस्वामीजीने अपने आनेका कारण बताया तो वह बोला—"आप कही छुपकर बैठ जाइये, न जाने कब डोगरा सैनिक आ निकले। न वे हिन्दू देखते है न मुसलमान। जिसे घूमता पाते है, गोली मार देते है। मै झुटपुटेके क़रीब कुदाल लेकर आऊँगा, तब आपकी बताई जगह खोदूँगा, आप कही छुपकर दूर बैठे रहे।"

२-३ घण्टेकी खुदाई पर सोना निकला तो नूराने दूर छिपे गोस्वामी-जी के कदमोमे हाँफते-हाँफते सोना रख दिया।

चलते वक्त उसे दसका नोट देने लगे तो नूरा सहमकर बोला—"हुजूर यह क्या ?"

"यह बच्चोकी मिठाईके लिए है।"

"हमारे बच्चे क्या दस-दस रुपयेकी मिठाई खाते है, हुजूर ? हम तो आपके वही पुराने गुलाम है। दुनिया चाहे बदल जाय, मगर हम नही बदलनेके। हमारी रगोमे हुजूरका नमक मौजे मार रहा है ?"

"बरखुरदार, हम तुम्हे वही अपना नूरा समझते है। अगर गैर समझते तो यहाँ क्यो आते ? और इतना कीमती जेवर तुमसे निकलवानेकी हिम्मत कैसे करते ? जब कि अब हाथको हाथ खाये जा रहा है ?"

"नहीं हुजूर, आप हमे गैर समझकर ही मजदूरीके एवज दे रहे है। यूँ आप आका है, जो भी दिया है चुचकारकर सर-आँखोसे हमेशा लगाया है। मगर इस वक्त कुछ न लेगे। हम तो मारे गैरतके मरे जा रहे है कि अपने आकाके मालो-असबाबकी हिफाजत न कर सके।" कहते-कहते नूरा

फूट-फूटकर रो पडा। नूराको रोते देख, गोस्वामी-बन्धुओंका भी जी भर आया। उन्होंने नूराको कलेजेसे लगा लिया और उस रोज पहिली वार स्वामी-सेवक गलेसे मिले।

× × ×

गोस्वामीजीके बाल-सखा कसरा साहवके अक्सर पाकिस्तानसे पत्र आते रहते हैं। एक पत्र उनमें-से नीचे दिया जा रहा है। कसरा साहव उर्दूके ख्यातिप्राप्त शायर और लेखक हैं। वडे नेक सहृदय मुसलमान हैं। डालमियानगरमें भारत-विभाजनसे पूर्व एक वार तशरीफ लाये थे, तव उनकी पत्नीका देहान्त हुए ४ रोज़ हुए थे। फिर भी मेरे यहाँ वच्चेकी वर्षगाँठमें सम्मिलित हुए। मुवारकवादी-गजल पढी। रातके १२–१ वजे तक शेरो-शायरीका दौर चला, परन्तु यह आभास तक न हो सका कि आपपर पत्नी-वियोगका पहाड टूट पडा है। उनके जानेके वाद ही उक्त घटनाका पता चला। ऐसा वज्र-हृदय मनुष्य भी पञ्जावका रक्त-काण्ड देखकर रो उठा।

मुहिब्बिये दिलनवाज जनाव गोस्वामी साहव,

यह खत क्यों भेज रहा हूँ, कुछ न पूछिये। मैंने सैयदके हालात सुने हैं, अभी गया नहीं। लेकिन जो कुछ सुना है, वह इतना है कि मैं और आप अपने हमवतनोंकी रज़ालत, मजहवी दीवानगी और दरिन्दगीकी वजहसे कभी किसी मोअज़्ज़िज शख़्सके सामने शर्मिन्दगीसे सर नहीं उठा सकेंगे। एक दीवानगीका सैलाव था, जो आया और रास्तेमें जो कुछ भी मिला उसे वहाकर ले गया। गाँवके एक-एक मकानको जलाया गया। स्कूलको खाकिस्तर कर दिया। यह नहीं सोचा कि आइन्दा वच्चोंकी तालीमका क्या होगा? चीज मिटाई तो आसानीसे जा सकती है, लेकिन वनाना मुश्किल होता है। फिर से किस्मके इदारे जिसमें हर कौम, हर मजहवके वच्चे

अपने मजाक और काबिलियतके मुताबिक फायदा उठा सकते हैं। इनको मिटाना एक ऐसा गुनाह है, जिसको कोई माफ नही कर सकता।

रावलपिंडी, जेहलम, कैमलपुर जैसे अजला जहाँ अहले हुनूद और सिक्ख भाइयोकी तादाद कम है। आह! इस अक्लियतको किस तरह बरबाद किया गया। ऐसा जुल्म तो किसी बडे-से-बडे जालिम बादशाहने भी मखलके-खुदापर नही किया। चगेज और हलाकू फसाने बनकर रह गये। इस तरक्कीके जमानेमे यह बरबरियत? या अल्लाह! खुदाकी पनाह, दिल नहीं चाहता कि ऐसे मुल्कमे रहे। यह मुल्क दरिन्दोका मुल्क है। इन्सानियतकी कीमत यहाँ कुछ भी नही। जज्बये-शराफत नापैद और कारे-रजालत अनगिनत। अब कैसा सलाम और कैसी दुआ? मिलें भी तो कैसे मिले? वे सिलसिले खत्म हो गये। वे दिन जाते रहे। इन्सानियत बदल गई। मेरे भाई, मै आपसे निहायत शर्मिन्दा हूँ कि मेरी कौमने दरिन्दगीका वह मजाहिरा किया, जिसके लिए मेरा सर हमेशा नीचा रहेगा।

—गुलामहुसैन कसरा मिनहास

२ जून १९५५ ई०

● ● ●

जीते जी तेरहवीं

ऐक्जीक्यूटिव ऑफ़िसर साहबकी कोठीमे कुटुम्बियो, रिश्तेदारो और इष्ट-मित्रोका ताँता लगा हुआ है। आज उनके पिताकी तेरहवी है। इसीलिए सबलोग एकत्र हुए है, परन्तु एक्जीक्यूटिव साहब हैरान है कि "यह मामला क्या है? १५–२० रोज हुए जब वे यहाँ कोठीमे रहनेकी नीयतसे आये ही थे। वाइफने उनको अन्दर नहीं घुसने दिया और दरबानसे बाहर निकलवा दिया। तब वे कहाँ जाकर कब और कैसे मर गये, मुझे पता तक नहीं, फिर इन सबको सूचना किसने दी? अजीब गोरखधन्धा है?"

एक्जीक्यूटिव साहब दम-ब-खुद बने इस तरह बैठे है, जैसे उन्हे साँप सूँघ गया है। लोग-बाग समझ रहे है कि पिताकी मृत्युका आघात मर्मान्तक हुआ है। अतः उन्हे धैर्य बँधानेका प्रयास कर रहे है—

"ऐक्ज़ीक्यूटिव साहब, अब तो सब्र करनेसे ही काम चलेगा, आप खुद समझदार है।"

"हाँ साहब, यूँ आपा बिसारियेगा तो ये फूल-से बच्चे कुम्हला जायेगे।"

"आप ही जब धीरज खोये दे रहे है, तब बहूरानी तो रो-रोकर हलकान हो जायेंगी।"

"यूँ तो साहब उनकी उम्र इतनी हो गई थी कि माताएँ अपने बच्चोके लिए भी इतनी उम्रकी दुआएँ मांगे, मगर १०-५ साल और बैठे रहते तो अच्छा था। बुज़ुर्गोका साया जितनी देर बना रहे उतना ही बेहतर।"

"मगर साहब, ऐसी मौत हर किसीको नसीब [illegible]ो। जिसके श्रवणकुमार-जैसा पुत्र, लक्ष्मी-जैसी पतोहू, लव-कुश जैसे पौत्र हो, धार्मिक परोपकारी जीवन, स्वस्थ देह, हरदिल अजीज, खूब कमाया, खूब लुटाया, कभी नाकपर मक्खी न बैठने दी, और चलते हाथ-पाँव शरीर छोड दिया, यह भाग्यसे ही नसीब होता है।"

"वे इन्सान नही, फरिश्ते थे।"

"तभी तो इन जैसा सपूत उन्हे नसीब हुआ।"

"आपने उनकी सेवा भी खूब की।"

"अरे साहव हक अदा कर दिया, पुत्र हो तो ऐसा हो।"

"उनकी एक-एक बात याद आ रही है। क्या पुरानी वजअ्-कितअ्के बुजुर्ग थे।"

"एक्जीक्यूटिव साहबकी शिक्षा-दीक्षामे औकातसे ज्यादा खर्च किया।"

"और आपकी शादीमे पानीकी तरह रुपया बहाया, ऐसा दिलवाला आदमी हमने और नहीं देखा।"

इन समवेदना एव सहानुभूति सूचक वाक्योका सिलसिला न जाने कबतक चलता कि एक चीखसे सबके-सब भौचक-से हो गये। एकने कोठीके सदर दरवाजेकी तरफ देखा तो देखता ही रह गया। दूसरे लोग भी आँख फाड-फाडकर देखने लगे। एक-दो भूत-भूत चिल्लाते हुए कोठीके अन्दर बेतहाशा भागे। एक-दो को गश आ गया। कुछ साहस बटोरकर सदर दरवाजेपर गये तो उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। वे विस्फारित नेत्रोसे वहाँ खडे हुए मनुष्यको देखने लगे। दाढी बढी हुई, कमर झुकी हुई, लाठीका सहारा लिये, फटे चिथडोमे मलबूस एक्जीक्यूटिव ऑफिसरके पिता लाला रुलियाराम खडे थे। इन सबको आश्चर्यचकित अपनी ओर ताकते देखकर उन्होने कहा—

"आप मुझे आँखे फाड-फाडकर क्या देख रहे है? एक्जीक्यूटिव ऑफिसर साहबका बाप सचमुच मर गया है। मै तो रुलियारामका ककाल मात्र हूँ। आप सबको मालूम ही है कि इसकी हकीकी माँ इसको जन्म देते ही मर गई थी। इसीके लालन-पालनके लिए मैने दूसरी शादी की और उस भागवानने जिस लाड़-प्यारसे इसका लालन-पालन किया, क्या हकीकी माँ करेगी। छल्ला-छल्ला बेचकर अपना पेट काटकर उसने इसे पढाया।

इसकी हर ज़िद पूरी की। यह इतना बड़ा ऑफिसर बन गया, तब भी उसने कभी एक पैसा लेनेकी इच्छा नही की। हमेशा यही कहती रही कि उनके खाने-पहननेके दिन है। मजे करने दो। हमारा क्या है पेडके पात है, गुजर-बसर चल ही रही है। मगर पाकिस्तान बन जानेसे मजबूरन लुट-पिटकर लाहौरसे यहाँ आना पडा। सोचा था आखिरी उम्रमे बेटेके पास रहेगे और वही कोई-न कोई रोजगार भी कर लेगे। मगर कोठीमे घुसते ही हमे बहूरानीने बाहर निकलवा दिया। लाचार शरणार्थी कैम्पमे जाना पडा। फिर मुझे खयाल आया कि बेटेकी मुहब्बत तो देख ली, अब कुटुम्बियो और रिश्तेदारोंको भी जरा परख लूं। जिसने जीतेजी मुझे पानी तकको न पूछा, वह मरनेके बाद क्या खाक क्रिया-कर्म करेगा? इसी खयालसे स्वय अपनी मृत्युके आपको पत्र लिखे, ताकि अपने जीतेजी अपनी तेरहवीं देख लूं। फिर कौन मेरी तेरहवी करेगा?

एक्जीक्यूटिव साहबको काटो तो खून नहीं। निर्जीव-से खडे रहे। हलियाराम उल्टे पाँव लाठी टेकता कैम्पको लौट गया। लाख खुशामद करने पर भी कोठीके अन्दर पाँव नही रखा।"

१० नवम्बर १९५१ ई०

• • •

अनुशासन-परीक्षा

जेलोंके नियमानुसार शामको किसी शहरका एक सांकेतिक नाम निश्चित कर दिया जाता है, ताकि कोई भी व्यक्ति-छद्म वेशमें वहाँ आ-जा न सके। जिन अधिकारियों, कर्मचारियों और सन्तरियोंकी रातको ड्यूटी लगाई जाती है, उन्हें निश्चित संकेत चुपचाप बतला दिया जाता है, ताकि वे पहरेवाले सिपाहीको बताकर आ-जा सकें।

मियाँवाली जेलमें एक रात वहाँके जेल-सुपरिण्टेण्डेण्ट निरीक्षण करते हुए घूम रहे थे। हर सन्तरीको उस रोज़का निश्चित शब्द बतलाते हुए बढ़ रहे थे कि एक सन्तरीको उन्होंने गलत संकेत बताया तो सन्तरी बा-आवाज़ बुलन्द कड़ककर बोला—"खबरदार, आगे न बढ़ना, वरना गोली मार दूँगा।"

जेल सुपरिण्टेण्डेण्टको इतनी बर्दाश्त कहाँ कि वह एक अदना सन्तरीसे ऐसे अल्फाज सुन सके। चट सीटी बजा दी। जिसे सुनते ही जेलके केन्द्रसे घड़ियाल ध्वनित हो उठा। घड़ियालकी आवाज कानोंमें पड़ते ही जो सिपाही जिस स्थितिमें था, उसीमें भागा हुआ मौकेपर पहुँच गया और साहबके आदेशपर उक्त सन्तरी गिरफ्तार कर लिया गया।

इस मुकदमेका निर्णय करनेके लिए पंजाबकी समस्त जेलोंका सर्वोच्च अधिकारी आई० जी० आया। अदालतमें सन्तरी हाजिर किया गया। दोनों तरफसे बयान लेनेके बाद आई० जी० मुजरिमसे यूँ मुखातिब हुआ—

"तुमने बहुत बड़ा कुसूर किया है, यह साबित होने पर भी तुम्हारी पुरानी खिदमतोंका खयाल रखते हुए तुम्हें माफ किया जा सकता है। बशर्ते कि अपनी बेअदबीके लिए तहरीरी माफी मांगो और आइन्दाके लिए नेकचलनी और वफादारीका हलफ उठाओ। वरना छः माहकी सख्त सजा सुननेके लिए तैयार रहो।"

सजाका नाम सुना तो सन्तरीका कलेजा काँप गया। किसी तरह वह अपनेको सँभालकर दृढतापूर्वक शान्त स्वरमें बोला—

"हुजूर, मैंने कोई कुसूर नही किया है, जिसके लिए माफी माँगू।"

"अपने आला अफसरको गोली मारनेके लिए तैयार हो जाना, तुम्हारी नज़रोंमें कोई कुसूर नही ?" आई० जी० ने ओठ चबाते हुए पूछा।

"गुलामकी ताकत नही जो ड्यूटीके अलावा उनकी तरफ आँख भरकर भी देख सके। कहाँ उनका जाहो-जलाल, कहाँ यह जर्रा नाचीज। मगर ड्यूटी ड्यूटी है। उन्हीका यह फरमान था कि ड्यूटीमें कभी हर्फ न आने पाये।" सन्तरीने निहायत इङ्कसारीसे अर्ज किया।

"मगर तुम्हें अपने अफसरके रुत्वेका तो पास होना ही चाहिए था। अफसर कोई गलती करे तौ भी अफसर है। अच्छा तुम तहरीरी माफी न माँगो। आइन्दा इस तरहकी हरकत न करनेके वादेपर माफ किये जा सकते हो।"

"यह आपकी गरीबपरवरी है वन्दानवाज! मगर मैं इस माफीको अपने लिए बाइसे-जिल्लत समझता हूँ। कानून कानून है, उसकी जदसे अफसरो-मातहत कोई नही वच सकता।"

"मैं देख रहा हूँ तुम्हे अपनी इस हरकत पर जरा भी मलाल नही है। वल्कि इस तरह समझे हुए हो कि गोया तुमसे वहुत वडा कारनामा सरजद हुआ है।"

"वेशक हुजूर, मुझे अपने पर नाज़ है, कि मैंने लमहे भरको अपनी ड्यूटीमे कभी गफलत नहीं की।"

वा-मशक्कत छ माहकी सज़ा सुनाकर अदालत उठ गई। वेचारा सन्तरी जेलके सीखचोमे वन्द कर दिया गया। उसकी बूढ़ी माँ, वीमार पत्नी, मरगिल्ले वच्चे विलख-विलखकर रोने लगे। दोस्त उसकी ज़िदपर हाथ मलते रह गये। कुछ ऐसे भी हितैषी थे जो उसकी पत्नी और क्वार्टरके वारेमे ख़याली पुलाव पकाने लगे।

थोडी देर बाद आई० जी० और सुपरिण्टेण्डेण्ट सन्तरीकी कोठरीमें पहुँचे। वहाँ भी उसे जब दृढ पाया तो उसकी पीठ थपथपाई और उसकी कमीज पर हवलदारीका बिल्ला लगा दिया।

यह सब अभिनय जेल-सुपरिण्टेण्डेण्टने अनुशासनके परीक्षणके लिए किया था, जिसमें उक्त सन्तरी खरा निकला।

१५ मार्च १९५५ ई०

• • •

अनुशासन-प्रियता

सन् १६१६ या १८ की बात है, दिल्लीमे काँग्रेसका वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। रायबहादुर स्वागतकारिणीके मुख्य कार्यकर्त्ता थे। कार्यकारिणी समितिकी बैठक चल रही थी। उसमे चुने हुए विशेष व्यक्ति ही जानेके अधिकारी थे। बहुत सावधानीपूर्वक पण्डालके मुख्य द्वारपर प्रवेश-पत्रका निरीक्षण किया जा रहा था। तभी रायबहादुर अन्दर जानेको उद्यत हुए तो स्वयसेवकोने प्रवेश-टिकट देखनेको हाथ बढाया। रायबहादुर इधर-उधरकी जेबोमे खोज कर ही रहे थे कि पास ही खडे हुए अधिकारियोंने आपको देख लिया। वे स्वयसेवकको लानत-मलामत करते हुए आपको हाथो-हाथ पण्डालमें ले गये और स्वयसेवककी इस असभ्यताके लिए बार-बार खेद प्रकट करने लगे।

उधर रायबहादुर खिन्न होनेके बजाय मुसकरा रहे थे। उन्होंने पण्डालमें जाते ही उस स्वयसेवकको बुलाकर मचसे उसकी खूब सराहना की और एक स्वर्ण-पदक भेंट किया। रायबहादुरकी अनुशासन-प्रियताको देखकर उपस्थित नेता पुलकित हो उठे।

रायबहादुर सुलतानसिंह दिल्लीके प्रतिष्ठित और जनप्रिय ऐसे नागरिक थे, जिनपर हर देहलवीको नाज़ था। जाहिरमें उनके साथ सरकारी उपाधि चिपकी हुई थी, किन्तु अन्तरगमे वे खरे देशभक्त थे। उनके यहाँ वाइसराय, चीफ कमिश्नर और राजा-महाराजा भी अतिथि रूपमें आते रहते थे, और देशके सर्वोच्च नेता—महात्मागाधी, प० मोतीलाल नेहरू, सरोजनी नायडू आदि जब-जब देहली तशरीफ लाते, उन्हीके यहाँ कयाम फ़रमाते थे। उन्हीके यहाँ काग्रेस-वर्किग कमेटीकी बैठकें होती और उन्हीके यहाँ अंग्रेज़ी सरकारसे लोहा लेनेके दाव-पेच सोचे जाते थे।

१५ मार्च १६५५ ई०

विपत्तिमें धैर्य्य

करीब १८–२० वर्ष पूर्वकी घटना है कि एक वैश्य-पुत्रके विवाहोपलक्षपर प्रीति-भोज हो रहा था। आगन्तुक ऊपर छतपर जीम रहे थे कि नीचेके एक कमरेमे किसी कामसे स्वय दूल्हा आया और वहाँकी बिजली खराब देखकर किसी औरको कहनेके बजाय जल्दीमे स्वय ठीक करने लगा। वक्तकी बात सहसा उसे करेण्ट लगा और आनन-फाननमे समाप्त हो गया। थोडी देरमे किसी कामसे उसी कमरेमे उसके पिता पहुँचे तो लडकेको मरा हुआ पाया। देखते ही हतप्रभ हो गये। इकलौता लडका यूँ बेमौत मर जाये, और वह भी ऐसे अवसर पर? फिर भी उनकी चेतना मरी नही। चुपचाप दरवाजेका ताला लगाकर बाहर निकल आये और पूर्ववत् आने-जाने वालोके स्वागत-सत्कारमे लग गये। ताकि किसीके आनन्दमे विघ्न न पडे। उनके हृदयका क्रन्दन बाहर सुनाई न दिया।

प्रीति-भोज समाप्त हुआ तो पुत्रकी ममतावश फिर कमरेमे गये और लाशसे लिपटकर सदैवको सो गये। जब परिवार वाले भोजन करनेके लिए बैठने लगे तो उन बाप-बेटोकी खोज हुई। जिसने वह दृश्य देखा सर पीट लिया।

१६ जून १९५५ ई०

● ● ●

पूर्व भवका बैर

दिसम्वर १९५२ की वात है, मै कानपुर अपने एक अजीजसे मिलने गया था। उन्हीके यहाँ श्री निर्मलकुमार जैनसे परिचय हुआ। वे उन दिनो वी० कॉम के अन्तिम वर्षमे थे। मेरे अजीजके यहाँ अक्सर आया-जाया करते है। मालूम हुआ कि वे कुछ वर्ष पहिले काफी वीमार रहे है, और सौभाग्यसे ही समझिये मौतके मुँहसे निकले है। मेरे आग्रहपर उन्होने जो घटना सुनाई, सुनकर स्तम्भित रह गया। विश्वास करनेको जी नही चाहता था; परन्तु यही वात उनकी माँ-वहिनोसे हमारे अजीज पहिले भी सुन चुके थे। परस्पर दोनो परिवारोमें स्नेह-सम्वन्ध था। आदमी भी भद्र, धर्मनिष्ठ और कुलीन थे। झूठ बोलनेकी न कोई वजह हो सकती थी, न वे लोग इस तरहके थे।

हाँ तो निर्मलकुमार साहवने सक्षेपमे अपनी वीमारीके वारेमे जिक्र किया—

"मुझे १९३९ ई० में विपवेल हुई थी। वह किसी तरह ठीक हुई तो १९४२ में मेरी कमरकी पसलीकी हड्डीमे फोडा होगया और मेरी हड्डियाँ रुधिर-पीपसे वरावर रिसने लगी। डाक्टरोने हड्डीकी टी० वी० निर्धारित की। ५-६ माह मै टी० वी० अस्पतालमे पडा रहा, किन्तु रोग उत्तरोत्तर वढता ही गया। जव मै जीवनसे कतई निराश हो गया और मृत्यु आनेकी कामना करने लगा, तभी किसीसे पिताजीको विदित हुआ कि ग्वालियर-राज्यमें भिण्ड-जिलेसे सात मील दूर वरोही नामके गाँवमें वावा रामदास पुजारी थाली वजाकर इस रोगका उपचार करते है।

माँ-वापका इकलौता लडका, वेचारे ममताके मारे मुझे वहाँ ले गये। गाँवमे पहुँचे तो हमसे पूर्व पहुँचे हुए कई रोगियो पर थाली वजाई जा रही थी। अत एक झोपडीमें रहकर हमे १५ रोज तक प्रतीक्षा करनी पडी। नम्वर

आने पर मेरे लिए थाली वजी। करीव दो माह तक रोजाना थालीका प्रयोग चलता रहा। आखिर मुझमें-से एक साँप वोला। जिसका आशय यह था कि–'हम (साँप और रोगी) दोनो सगे भाई थे। अमुक गाँवमें अमुक ठाकुरके लडके थे। इसने मुझे कत्ल कर दिया। मैं मरकर साँप हुआ और मैंने प्रतिहिंसाके वश इसे डस लिया। यह मरकर फिर कानपुरमे उत्पन्न हुआ। मगर मेरा क्रोध शान्त नही हुआ। अत मेरे ही जहरके परिणामस्वरूप पहिले विषवेल गर्दनमें हुई। फिर वही पसलियोमे उभरी। लाख प्रयत्न कीजिए मैं इसे सडा-सडाकर मारूँगा।

वेचारे बावा रामदासके काफी प्रयत्नके वाद साँप क्षमा करनेको मजवूर होते हुए बोला–"अच्छा, मैं इसे क्षमा किये देता हूँ। प्रायश्चित्त स्वरूप उस गाँवमें मेरे नामका एक मठ वनवाना होगा, चार गाये दान करनी होगी और २०० ब्राह्मणोको भोजन देना होगा।"

उक्त शर्तकी पूर्तिके वाद मैं चगा हो गया। न कही टी० वी० रही न कही विषवेल। दस वर्षसे आँख दुखनी भी नही आई।

उपस्थित श्रोताओंने एक साथ पूछा—"क्या आप लोग उस गाँवमें भी पता लगाने गये थे ?"

"हाँ पिताजी गये थे और दरियाफ्त करनेपर उक्त घटना सत्य निकली।"

१७ मार्च, १६५५ ई०

ब्रह्मचारिणी गाय

मौण्टगुमरी जेलमे रात्रिको सब कार्योसे निश्चिन्त होकर बैठे तो पशुओकी चर्चा चल निकली। बातोके सिलसिलेमें प० रामस्वरूपजी राजपुरा (जीद स्टेट) निवासीने—जो कि दफा १३१ में ३ वर्षकी सजा लेकर आये थे—अपने आँखो देखे प्रत्यक्ष अनुभव सुनाये, जो कि मैंने कौतूहलवश उसी समय नोट कर लिये थे। उन्होने बतलाया कि—हमारे गाँवसे १२ कोस दूरी पर गुराना गाँव है। वहाँ एक मनुष्यकी गायने एक साथ दो बछड़े प्रसव किये। उसके बाद वह गर्भवती नही हुई। उसे कामोन्मत्त करनेके लिए कितनी ही दवाइयाँ खिलाई गई, किन्तु उसे कामेच्छा नही हुई। जब उसे जरूरत-से-ज्यादे तग किया गया तो, वह अपने मालिककी क्वारी लडकीको स्वप्नमें दिखाई दी और कहा कि मुझे कामोत्पादक चीजे न खिलाये और न विजारके पास ले जाएँ, मै अब ब्रह्मचारिणी ही रहना चाहती हूँ। और यदि मुझे अब तग किया गया तो मै कुँएमे गिर कर प्राण दे दूंगी। लडकीने स्वप्नका जिक्र किया तो सब हँसने लगे और अपना प्रयत्न चालू रक्खा। अन्तमें गायने कुँएमें गिर कर प्राण छोड़ दिये। तब लोगोने गायके ब्रह्मचर्यव्रतको समझा।

७ जनवरी, १६३३ ई०

• • •

भ्रातृ-प्रेम

"इसी गायके दो जुगलिया बछड़े जो अभी तक जीवित हैं। एक हजार रुपयेमें भी उसके मालिकने नही बेचे। उन दोनो बैलोमें अटूट प्रेम है। एक साथ खाते-पीते, उठते-बैठते हैं और आश्चर्य तो यह है कि गोबर और पेशाब भी एक साथ करते हैं। यदि दोनोको अलग कर दिया जाये तो न खाना ही खायेंगे और न किसी अन्य बैलके साथ गाडी या हलमे चलेंगे। यदि एकके नीचे जमीन गीली है तो सूखी जमीन वाला बैल भी खडा रहेगा। यदि अलग-अलग पानी या खाना दिया जाये तो वह सूंघेंगे भी नही। एक ही बर्तनमें होगा तो दोनो साथ मिलकर खायें-पीयेंगे। इन बैलोका भ्रातृ-प्रेम देखकर लोग हैरान होते हैं।"

७ जनवरी १९३३ ई०

• • •

कृतज्ञता

"हमारे गाँव राजपुरासे एक कोसके फासलेपर श्रोड (खानाबदोश) ठहरे हुए थे। उस गिरोहमें एक युवकके पास कुत्ता था। युवक सो रहा था कि अचानक बावले गीदडने आकर उसे काट लिया। कुत्तेने देखा तो युवककी काटी हुई जगहसे वह थोड़ा-सा माँस काटकर ले गया, ताकि पागल-पनका असर युवकके रक्तमें न दौड जाये। कुत्तेकी इस दूरदर्शिताको वह मूर्ख युवक न समझा। उसने सोचा, गीदडसे बचाना तो दूर, उलटा मेरा ही गोश्त काटकर ले गया। ऐसे कुत्तेको मार देना ही अच्छा है। यह सोचते हुए क्रोधावेशमे कुत्तेको इतनी ज़ोरसे लाठी मारी कि वह अचेत होकर गिर पडा। कुत्तेको छोडकर श्रोड लोग उस युवकको जीन्द स्टेट के शफ़ाखानेमे ले गये। तब डाक्टरने बतलाया कि यदि उस जहरीले गोश्तको कुत्ता न बकोटता तो इलाज होना नामुमकिन था। यहाँ आते-आते गीदडका जहर पूरा काम कर गया होता। वह कुत्ता अचेत पडा हुआ था। मेरे बडे भाई शकरदत्त उधरसे जा रहे थे कि उन्होने कुत्तेका वृत्तान्त सुना तो वे उसे गाडीमें रखकर अपने यहाँ ले आये और दवा-दारू करके उसे अच्छा कर लिया।

उन्ही दिनो हमारे गाँव राजपुरामे एक भैसा मरखना हो गया था, वह जिस खेतमे चाहता घुस जाता और खेतका नाश कर देता। यदि उसे कोई ललकारता तो आवाज़की सीधमें जाकर पहले ललकारनेवालेको मारता, फिर खेतमें जाकर चरता। उसके इस उपद्रवसे गाँवभरमें आतंक-सा छा गया। धार्मिक रूढियोके कारण गाँव वाले उसे बन्दूक वगैरहसे मारना चाहते नही थे और लाठियोकी मारसे वह वशमें आता नही था। बडी परेशानीमें गाँव-वाले पड़े हुए थे। एक रोज़ वह हमारे खेतमें घुसा तो भाई ने जवानीके जोशमें उसे ललकारा, वह लाल-लाल आँखें किये हुए सीधा उनकी ओर दौडा। सौभाग्यसे वह कुत्ता भी वही पर था। कुत्तेने भैंसेको इतने वेगसे

आक्रमण करते देख उसकी पीठ पर छलाग मारी और अपने तेज़ दाँतोसे उसकी गर्दनका गोश्त वकोटने लगा। कुत्तेके इस दाँवके आगे भैसा आक्रमण करना तो भूल गया, उल्टा उसे अपनी ही जानके लाले पड़ गये। इस नागहानी वलासे पिण्ड छुडानेकी गरजसे वह इधर-उधर भागने लगा। और अन्तमें लाचार होकर वह तालावमे कूद पडा। तव कही कुत्तेने उसे छोडा। इस घटनाके वाद भैसा इतना सीधा हो गया कि वच्चोसे भी कुछ न कहता था। खेद है मेरे भाई, वह कृतज्ञ कुत्ता और भैसा अव इस ससारमे नही है।"

७ जनवरी १९३३ ई०

• • •

साँपका चमत्कार

सदाचारी पशुओके सिलसिलेमें सरदार बेलासिह 'केहर' सम्पादक 'कृपाण' अमृतसरने जो कि १३१ दफामे-१ वर्षके लिए मौण्टगुमरी जेलमे आये थे—वतलाया कि हमारे गाँव विछोह (जि०अमृतसर) मे एक विरोची वुड्ढा ठेठर गाँव (जि० लाहौर) का आकर रहने लगा था। उसका पाँव कटा हुआ था। मैने कौतूहलवश टाँग कटनेका कारण पूछा तो उसने वतलाया कि "हम ऊँटोका व्यापार करते थे। हस्वदस्तूर एक रोज मै ऊँटोको चराने जगल ले गया तो उनमे-से एक ऊँट मुझे मार डालनेके लिए मेरी ओर लपका[1]। मै जान वचानेकी गरजसे निकला। ऊँट भी मेरा पीछा कर रहा था। मै उसकी निगाहसे ओझल होनेके लिए झाडियोके एक झुण्डमे घुसा तो वहाँ छिपे हुए कुँएमे गिर पडा। उस कुँएमें पानी नाममात्रको था। मुझे झाडीमे घुसते हुए ऊँटने देख लिया था, अत वह भी वही चक्कर काटने लगा। कुएँमें पडनेपर व-मुश्किल मेरे होश-हवास ठीक हो पाये थे कि मुझे वहाँ दो भयानक साँप दिखाई दिये। मारे घवराहटके मेरी घिग्घी वँध गई। उनमें-से छोटे साँपने वाहर निकल कर उस ऊँटको काट खाया, जिससे वह ऊँट धडामसे जमीनपर गिर पडा। उधर वह वडा साँप भी वाहर निकला और अपने फणको झाडीकी एक मजवूत टहनीमे लपेट पूँछके हिस्सेको मेरे सिर पर हिलाने लगा। पहले तो मै घवराया, आखिर उसका मतलव समझकर मै

---

१. ऊँट वडा कीनावर (वैर-भावको हृदयमें वनाये रखनेवाला) होता है। मालिक या चरवाहेकी डाट-डपट किसी वक्त अगर इसे अपमान-जनक मालूम होती है, तो उस वक्त चुपचाप सहन कर लेता है। मगर भूलता नही और अवसरकी तलाशमें रहता है, मौका मिलते ही अपमानकारकको मारकर अपने अपमान या वैरका वदला ले लेता है।

उसकी पूँछ पकड कर वाहर निकल आया। वाहर आकर मैंने ऊँटको मरे हुए देखा तो गुस्सेमे उसको एक लात मारी। वह ऊँट साँपके जहरसे इतना गल गया था कि मेरे लात मारते ही पाँवका थोडा हिस्सा ऊँटके गोश्तमे घुस गया। मैंने शीघ्रतासे पाँव निकाल लिया, किन्तु जहर वरावर पाँवमे चढ रहा था। मेरे भाईने पाँवकी यह हालत देखी तो दरातीसे मेरी टाग काट डाली, ताकि जहर आगे न बढ सके। तभीसे मैं इस पाँवसे लँगडा हूँ।"

उक्त उदाहरणोमे कितना अश सत्य-असत्य है, मैं नही कह सकता। पाठक इन्हें सत्य ही मानें, ऐसा मोह मेरे अन्दर नही है।

जनवरी १९३३ ई०

• • •

ये सम्मान

भारतमें कभी हैजा, कभी प्लेग, कभी लँगडा वुखार, कभी गर्दनतोड ज्वर आदिकी ववा फैलती है, तो कभी बाढ, जलजले, सूखा, टिड्डियो आदिके आक्रमण नाकमे दम किये रहते है। कभी इन्श्योरेन्स कम्पनियोकी बाढ आती है तो कभी बैंक और स्टूडियो धडाधड खुलने लगते है। आजकल अभिनन्दन-ग्रन्थो, डाक्टरेट-उपाधियो और जन्मगाँठोकी भरमार है। नेता तो नेता, उनके चपरासियोकी भी जन्मगाँठे मनाई जाने लगी है। यूनिवर्सिटिया खोजती फिर रही है कि कोई नेता ऐसा वचा तो नही, जिसे डाक्टरेटकी उपाधि अभी तक न मिली हो। यही हाल अभिनन्दन-ग्रन्थोका है। गली-गली और कूचे-कूचेमे अभिनन्दन-ग्रन्थ समितियाँ वन रही है।

इसी तरहका प्रसग जैन-महामण्डलके अधिवेशनमे आये हुए प्रतिनिधियोमे चल रहा था। मैने कहा—"भई, हम भी अपने चपरासीको डाक्टरेटकी उपाधि और अभिनन्दन-ग्रन्थ दिलाना चाहते है। इस दुनियाँमें जो भी अच्छे कार्य कर लिये जाये, गनीमत है। साँसका क्या भरोसा, आया-आया न आया।"

इस जुमलेको कुछने सचमुच सीरियस रूपमें लिया और वे उपाय भी वताने लगे। जिन्होने मजाक समझा, वे खिलखिलाकर हँस पड़े। वौद्ध भिक्षु आनन्द कौसल्यायन वडे गम्भीर वने यह सव सुन रहे थे। उसी गम्भीर वाणीमें वोले—"योरोपमें कुछ लोगोने उपाधि देनेके लिए एक सस्था खोल रखी थी। निश्चित निधि प्राप्त होनेपर हर-एकको डिगरी दे देते थे।"

एक वार एक साधारण व्यक्तिको डिगरी मिली तो वह अपने घोडेको भी लेकर वहाँ पहुँचा और उन्हे झेंपानेकी गरजसे वोला—"साहव, अपनी

फीस लेकर मेरे घोडेको भी पदवीसे सम्मानित कीजिए। यह भी क्या याद रखेगा कि कोई मालिक मिला था।"

संस्थाका अधिकारी बोला—"खेद है हम घोडेको उपाधि नही दे सकते। फिलहाल हम गधोको ही यह सम्मान दे रहे हैं'।"

लतीफा कुछ ऐसा चुस्त और मौजूं हुआ कि सुनकर लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये और ग्वालियर किलेमें घूमनेकी सारी थकान भूल गये।

५ नवम्बर १६५१ ई०

• • •

औक़ात न भूलिये

बादशाह सलामत जगलमे शिकारकी खोजमे घूम रहे थे कि एक झाडीसे शेरने अचानक हमला कर दिया। लमहे भरमे बादशाहको दबोचने ही वाला था कि अगरक्षककी गोलीने उसका काम तमाम कर दिया। बादशाहको जीवन-दान मिला।

होना तो यह चाहिए था कि बादशाह उसका जीवन पर्यन्त कृतज्ञ रहता, परन्तु बादशाह फिर बादशाह न रहता। अगरक्षक उसपर हावी हो जाता और बादशाह अगर बादशाह रहता भी तो उसकी हैसियत शतरजके बादशाह-जैसी होती। जन-जनका अहसान भूलकर, लाखो नर-मुण्डोपर पाँव रखकर ही तो वह राज्यासन तक पहुँच पाया था।

शेरके धराशायी होते ही बादशाहने तेवर बदल कर पूछा—"क्या यह हरकत तुमसे सरजद हुई ?"

अगरक्षकने बा-अदब अर्ज किया—"जी, जहाँपनाह, खता मुआफ, शेरकी दहाड पर हाथ हिल जानेसे पिस्तौलका घोडा दब गया और कम्बख्त गोली न जाने कैसे निशानेपर जा लगी ? अपनी घबराहटपर बहुत नादिम हूँ जहाँपनाह ! ऐसी गलती फिर न होगी जर्रानवाज !"

मगर इस तरहकी गलतियाँ वह हमेशा करता रहा। इसी तरहकी गलतियो पर ही तो उसकी मुलाजमत टिकी हुई थी। गलतियाँ न करता तो बादशाह कभीका चपेटमे आ गया होता। अपनी उचित बातको भी मालिकके सकेतपर भूल तस्लीम कर लेना नौकरीकी सबसे बडी विशेषता है।

अत. अगरक्षक जब भी ऐसी ग़लती करता, घुटने टेककर क्षमा माँग लेता। बादशाहपर यह प्रकट न होने देता कि वह उसकी निशानेबाजीकी हकीकत जानता है।

बादशाह चारघोडोकी लैण्डोमें सैरको जाता तो अंगरक्षक भी साथ रहता। उसकी सीट कोचवानके बराबर में थी। मगर बादशाह उसे कृपा

पूर्वक अपने सामने बिठाया करता। अगरक्षक इस सौजन्यको अपना अधिकार नहीं, अपितु बादशाहका अनुग्रह और जर्रानवाजी समझता। बादशाहके अन्दर बैठनेपर दरवाजा बन्द करता। अपना एक पाँव नीचेके पायदानपर रखता, दूसरा पाँव मुन्तजिर रखता कि—लैण्डोके चलते ही उचककर कोचवानके पास बैठ जाय, परन्तु बादशाहका सकेत अन्दर बैठनेका होता और वह लपककर अन्दर जा बैठता।

रोजानाका यही दस्तूर था। न कभी बादशाहने यह कहकर दिया कि तुम कोचवानके बजाय हमारे सामनेकी सीटपर बैठा करो और न अंग-रक्षकने ही उसे अपना हक माना। एक दिन रोजानाकी तरह एक पाँव पायदानपर और दूसरा पाँव मुन्तजिर कि बादशाहके सकेत पर लैण्डो बढ ली। मगर अगरक्षकको अन्दर बैठनेका इशारा न हुआ। वह मतानत और इकसारीके साथ लपककर कोचवानके बराबरमे उसी तरह जा बैठा, जिस तरह बादशाह सलामतके साथ बैठता था। न दिलमे मलाल न चेहरे पर झेंप। फिर मुद्दतो वह कोचवानके बराबर ही स्थान पाता रहा।

बादशाहके इस व्यवहारसे पत्नीको खिन्नताका आभास मिला तो मुसकराते हुए बोला—"तुम बहुत गलतीपर हो। मालिककी मेहरबानियो, नवाजिशोको अपना हक समझना गुलामकी सबसे बडी भूल है। वह तो एक ऐक्टरके मानिन्द है। नाई, धोबी, वजीर, वगैरह जिसका भी पार्ट दिया जाय, ऐक्टर ब-खुशी करता है। बादशाहका पार्ट करनेके बाद न तो वह अपनेको बादशाह समझने लगता है, और न फिर भिखारीका पार्ट करनेसे इन्कार करता है। मालिक अपनी जरूरतके मुताबिक उसका स्वाँग भरता रहता है। कभी जेवरोसे लादता है, कभी हाथमें कास-ए-गदाई (भिक्षा-पात्र) देता है। कभी हाथीपर बिठाता है, कभी गधेपर घुमाता है। हर आदमीको अपनी औकात-ओ-हकीकत हमेशा याद रखनी चाहिए। जब भी भूलेगा मात खायगा।"

१८ मार्च १९५५ ई०

मित्रताके लिए

एक व्यक्ति सपत्नीक तीर्थयात्राको जाने लगा तो अशर्फ़ियोकी थैली अपने एक साहूकार मित्रके यहाँ सुरक्षाकी दृष्टिसे रख गया। साहूकारने वगैर गिने थैली तिजोरीमे रखवा दी और एक दो वर्षके बाद जब वह यात्रासे लौटा तो माँगने पर वगैर गिने ही ज्यो-की-त्यो वापिस कर दी।

दो-एक रोजके वाद अशर्फियाँ गिनी तो ५ अशर्फियाँ कम निकली। वह पेट पकड़े हुए साहूकारके पास जाकर बोला—"वाह मित्र! तुम भी विचित्र मनुष्य हो। तुम्हारे विश्वासपर मैं बिना गिने अशर्फियाँ दे-ले गया, परन्तु तुम कतर-ब्योंत किये बगैर न चूके। गिनी तो ५ अशर्फियाँ कम निकली।"

साहूकारने चुपचाप उसे ५ अशर्फियाँ दे दी। घर आकर वह अपनी पत्नीसे बोला—"देखोजी कैसा कलियुग आ गया है, हाथको हाथ खाने लगा। भला अब किसका विश्वास किया जाय। जब ऐसे-ऐसे मित्र भी धोखा देने लगे। यदि मैं लिहाज़वश अशर्फियाँ न गिनता तो ५ कम हो गई होती।"

पत्नीके पूछनेपर उसने बताया तो वह सर पीटकर बोली—"यह आपने क्या अनर्थ किया? वहाँ जानेसे पूर्व मुझसे जिक्र तो कर लेना था। वे तो मैंने निकालकर सुनारको दी हैं। जाओ उनकी अशर्फियाँ अभी वापिस करके आओ।"

अशर्फियाँ लौटाने गया तो साहूकारने वगैर कुछ कहे-सुने वापिस ले ली। पासमे बैठे किसी सज्जनने पूछा—आप भी विचित्र हैं। उसने आपपर गबनका आरोप किया, तब भी आप मुसकराते रहे, और वापिस दे गया तब भी मुसकराते रहे, आप तो जीवन्मुक्त मालूम होते हैं।"

साहूकारने उसी तरह मुसकराते हुए कहा—"वह मेरा मित्र है।"

२१ अगस्त १९५५ ई०

नादिरशाहका जुकाम

दिल्ली लूटने-खसोटनेके वाद नादिरशाह दिल्लीके लाल-किलेमे मुहम्मद-शाह रँगीले वादशाहका मेहमान था। एक रोज उसे कुछ जुकाम-सा मालूम दिया तो वादशाहने शाही हकीमको जुकामकी अक्सीर दवा ले आनेके लिए तलव किया।

एक विल्लोरी मर्तवान, सोनेका काँटा और मोती-मूँगेके वाट लेकर शाही हकीम तुरन्त उपस्थित हुआ। वह अभी वादशाहसे यह कह भी न पाया था कि दो रत्ती दवा देते ही जुकाम काफूर हो जायेगा कि मर्तवानपर नादिरशाहकी नजर गई तो उसे दवाका रूप-रग और सुगन्ध बेहद पसन्द आया। उठाकर खाना शुरू कर दिया और सव दवा करीव-करीव २ सेर खानेके वाद वोला—"हलुआ बेहद पसन्द आया।"

२२ अगस्त १९५५ ई०

• • •

अति सर्वत्र वर्जयेत्

पुराने जमानेमे एक राजा सगीतके इतने अधिक शौकीन थे कि दिन-रात सगीतकी महफिलोमे व्यस्त रहते थे। राज-काज देखनका उन्हे अवकाश ही नहीं मिलता था। यह शौक यहाँ तक वढा कि उन्होने राज्यभरमे घोपणा करा दी कि "आवश्यकीय-से-आवश्यकीय प्रार्थना भी राजाके समक्ष गाकर ही कही जाय" अत मत्री, सेनापति, राज्य-कर्मचारी, यहाँतक कि राज-माता और महारानी तक भी राजासे सगीत-द्वारा ही वार्त्तालाप करती। परिणाम इसका यह हुआ कि राज्यका प्रत्येक व्यक्ति सगीत-निपुण हो गया। भले ही किसीको रोना आये या न आये, सगीत-ज्ञान आवश्यक हो गया, किन्तु हर वातकी एक सीमा होती है। अति सर्वत्र वर्जनीय है।

एकबार राजा राजधानीसे कुछ दूर गये हुए थे कि उनके अन्त.पुरमे आग लग गई। आगकी सूचना राजातक गद्यमे पहुँचानेका साहस कौन कर सकता था? वगैर गाये वात करनेकी कोई कल्पना भी नही कर सका। अत राजातक अग्निकाण्डके समाचार यथा शीघ्र पहुँचानेके लिए तैयारियाँ जल्दी-जल्दी होने लगी। स्वय राजाके महलोमे आग लगी थी, इसलिए अच्छे-से अच्छे कविको खोजकर कविता वनवाई गई। सगीत-विशेपज्ञसे ध्वनि वैठवाई गई और ख्यातिप्राप्त गायकोको अर्ज करनेके लिए तैयार किया गया। जल्दी-जल्दी तैयारियाँ करनेके वावजूद भी २-३ रोजके वाद राजाके समक्ष पेशी हो सकी। गायकने स्वर लिया——

"आग लगी"

महाराज सुनकर झूमने लगे। "वाह क्या मौलिक कल्पना है? वर्पा ऋतुमें आग लगी। विरहीजनोंके दग्ध हृदयको आग लगीकी कल्पना विल्कुल अछूती और यथार्थ है।"

महाराजकी दाद मिलते ही गवैयेको यह स्मरण ही न रहा कि उसे

क्या सन्देश कहना है? वह तन्मय होकर अलाप लेने लगा। आखिर महाराज ही झूमते हुए बोले—"हाँ भई, कैसे लगी, कहाँ लगी, तनिक यह भी बतलाइये।" गायकने अन्तरा उठाया—"अन्त पुरमे आग लगी।"

अन्तरा सुना तो महाराज बेसाख्ता बोल उठे—"वाह उस्ताद क्या बात पैदा की है। 'अन्त पुरमे आग लगी' क्या वास्तविक चित्र खीचा है। सर्व-साधारण विरहाग्नि-ताप कैसे सहन कर सकते है? बेशक यह आग तो राजाओके अन्त पुरमे ही सहन होती है। भई वाह क्या मौसमी राग छेडा है! हाँ उस्ताद किसके अन्त पुरमे आग लगी? वह कौन भाग्यशाली है, जिसकी पत्नियाँ विरह-तापसे धधक रही है।" गायकने फिर मुरकी ली—

"आप हीके अन्त पुरमे आग लगी"

महाराज विह्वल-से होकर गवैयेको सीनेसे लगाना ही चाहते थे कि भीड-मे खडे हुए कुछ लोगोकी चीत्कार सुनकर वास्तविक-स्थिति समझ गये।

राजधानी पहुँचकर अन्त पुरमे जो विध्वस-लीला देखी तो महाराज चीत्कार कर उठे। लोग उनके रुदनको देखकर हतप्रभ थे कि यह सगीतका पुजारी आज गद्य क्यो अपनाये हुए है?

२० अगस्त १९५५ ई०

• • •

खुल गई सारी हक़ीक़त

[जब कभी किसी ऐसे आदमीसे कोई जलील हरकत हो जाती थी, जिससे ऐसी आशा नहीं की जा सकती थी। तब प्रसंग छिड़ने पर पूज्य मामाजी अक्सर यह कहानी बड़े मजे ले-लेकर सुनाया करते थे। बचपनमें कई बार यह कहानी उनकी जबाने-मुबारकसे सुननेका मुझे फख्र हासिल है। उन जैसा अन्दाजे-बयान, तर्जे-गुफ्तगू कहाँसे लाऊँ ? फिर भी आज उसे कागजपर उतारनेको जी चाह रहा है]

ईदकी नमाज पढनेके लिए बादशाह सलामत बहुत बडे जुलूसके साथ हाथीपर सवार होकर मुजरोका जबाब देते हुए, नजरो-नियाजको नजरोसे गुजारते हुए खन्दापेशानीके साथ ईदगाह तशरीफ ले जा रहे थे कि रास्तेमें नगर-सेठकी दूकान पडी तो दस्तूरके मुताबिक हाथी ठहराया गया और नगर-सेठके अभिवादनके बाद बादशाह सलामतने मुसकराते हुए पूछा---"सेठ साहब मिजाज मुबारक !"

सेठ साहबने अन्यमनस्क भावसे जवाब दिया---"जहाँपनाहकी बदौलत दिन गुजर रहे है।"

नगर-सेठकी आवाजमे कुछ वेदनाकी-सी झलक मालूम दी तो बादशाहने अपने वजीरकी तरफ देखा। वजीर ने आँखो-आँखोमें जाहिर कर दिया कि व्यापारमे अचानक बहुत अधिक घाटा लग जानेके कारण समस्त कारोबार चौपट हो गया है और रजो-मुसीबतमे दिन कट रहे है।

वजीरका मनोभाव समझकर बादशाह सहृदयता पूर्वक बोला---"सेठ साहब, हालात जानकर हमे बेहद मलाल हुआ। कहिये आपकी क्या इम-दाद की जाय ?"

नगर-सेठ हाथ जोडकर बोला---"जर्रानवाज ! मेरे ये चार लडके

ना-बीना (सूरदास) है। इन्हे एक लाख रुपयेमे गिरवी रख लीजिये। चन्द महीनेमे इन्हे छुडा लूँगा।"

बादशाहने एक नजर लडकोपर डालते हुए फरमाया—"सेठ साहब, इमदादके तौर पर शाही खजानेसे रुपया अता किया जा सकता है। मगर रुपयेके एवजमे इन ना-बीना लडकोको लेकर हम क्या करेगे? इनकी देख-रेखको चार खिदमतगार हमे और रखने होगे।"

"जहाँपनाह! मै वैश्य हूँ। व्यापारके लिए कर्ज देना-लेना हम जाइज समझते है। हाथ पसारनेसे जान देना बेहतर समझते है। जाहिरमे यह चारो लडके ना-बीना है। मगर इनके हियेकी आँखे खुली हुई है। इनमे-से एक घोडोकी शिनाख्तमे कमाल रखता है। दूसरा जवाहिरातका पारखी है। तीसरा मस्तूरातका माहिर है और चौथा इन्सानोके खरे-खोटेकी पहचानमे अपना जवाब नहीं रखता। जब तक एक लाख रुपये न लौटा सकूँ, अमानतन इन्हे अपनी खिदमतमे रखिये। इनके हुनरोको आजमाइये। हुनरमे कही भी खता खाये तो इनका सर कलम करा दीजिये और पया वापिस मँगवा लीजिये।"

शाही खजानेसे नगर-सेठको एक लाख रुपये भिजवा दिये गये और बन्धक स्वरूप चारो लडकोको किलेमे बुलाकर उन्हे एक मकानमे ठहरा दिया गया और भोजनके लिए निश्चित खुराकी[1] नियत कर दी गई।

सेठ-पुत्रोको आये हुए चन्द ही रोज हुए थे कि बादशाहने एक बेशकीमती घोडा खरीदा। घोडेकी जब कीमत दी जाने लगी तो खयाल आया कि क्यो न रईस-जादोको भी बुलाकर इस वक्त परख लिया जाय जो कई रोजसे शाही रोटियाँ तोड रहे है।

---

१ अर्थात् भोजनके लिए सामानकी तौल निश्चित कर दी कि इतना वजन सामान रोजाना मिला करेगा।

शाही आदेशानुसार अश्व-पारखी सेठ-पुत्र आया। घोड़ेपर एक-दो मिनट हाथ फेरकर बोला—"खुदावन्दा! यह घोडा ख़रीदनेके बजाय गोली मार देनेके काबिल है।"

सेठ-पुत्रकी बात सुनी तो पास खडे हुए मुसाहब, अहाली-मवाली सब ठहाका मारकर हँस पडे। वजीरने हँसीको जब्त करते हुए कहा—

"रईसजादे होशमे हो या नही? जानते नही यह घोडा जहाँपनाहने खुद पसन्द फरमाया है। जिनकी रानसे न जाने कितने बेहतरीन घोडोको निकलनेका फख्र हासिल होता रहा है।"

रईसजादा नम्रता पूर्वक बोला—"इसमे किस काफिरको शक हो सकता है। हुजूर सही फरमा रहे है। मगर बेअदबी मुआफ, मेरा हुनर भी खता नही कर सकता। इससे नदी पार किया जाय। तमाम हकीकत अभी जाहिर हो जायगी।"

घोडेपर सवार होकर कोचवान नदीमे घुसा तो घोडा तैरनेके बजाय थोडी दूर जाकर पानीमे लोटनी खाने लगा। कोचवान सावधान था। घोडेसे कूद पड़ा और उसे तुरन्त पानीसे बाहर ले आया। बादशाह हैरतसे बोला—"रईसजादे! कमाल रखते हो अपने हुनरमे, मगर हम जानना चाहेगे कि घोडेका यह ऐब तुमने कैसे भाँप लिया?"

सेठ-पुत्रने दस्तबस्ता अर्ज की—"बन्दानवाज, मुझे इसके पसीनेमे भैसकी ू आई। मालूम होता है जन्म देकर इसकी माँ मर गई थी और इसकी परवरिश भैसके दूधसे हुई है।"

व्यापारीने सेठ-पुत्रकी उक्तिका समर्थन किया। बादशाह रुपयो और जानके ख़तरेसे बचा। उन्होने मारे खुशीके इस सेठ-पुत्रकी ख़ुराक बतौर इनाम दुगुनी कर दी।

कुछ ही दिनके बाद बादशाहने एक हीरा पसन्द किया जो कई लाखका था। कौतूहलवश उस समय भी रत्न-पारखी सेठ-पुत्रको तलब किया गया।

सेठ-पुत्रने हीरेको हाथमे लेते ही अर्ज किया—"यह हीरा जिसके पास रहेगा, उसके पास उसकी पत्नी नही रहेगी। बादशाहने जौहरीको आग्नेय नेत्रोसे देखा तो वह काँप उठा! हाथ-बाँधकर घिघयाते हुए बोला—"जहाँपनाह! जानोमालकी अमान मिले तो अर्ज करूँ। यह हीरा जिस जौहरीसे मैंने खरीदा था, उसकी पत्नी मर चुकी थी। खरीदते ही मेरी भी पत्नी मर गई। मगर खुदावन्द! मुझे यह ख्वाबो-खयाल भी न था कि यह सब इसी हीरेकी करामात है। वरना मै हरगिज़ यह चीज़ नही दिखाता।"

बादशाहने खुश होकर रत्न-पारखीकी भी खुराकी दूनी मुकर्रर कर दी।

एक रोज़ बैठे-बिठाये बादशाहको मजाक सूझा तो उसने अपने हरम-सराकी बेगमात एकत्र की और मस्तूरातके पारखीको बुलवा भेजा। सेठ-पुत्र एक-एकके सरपर हाथ रखता जाता था और बतलाता जाता था कि यह पठानी है, यह मुगलानी है, यह तुर्की है, यह ईरानी है। गरज इसीतरह बताते हुए जब वह एक बेगमके पास पहुँचा तो बोला—"जहाँपनाह! यह वेश्या-पुत्री है।"

यह सुनते ही अन्य बेगमात खिल-खिला उठी और बादशाह सकतेमे आ गया। उसे बाहर लाकर बोला—"रईसज़ादे! मालूम होता है तुम अपनी जानसे आजिज़ आ गये हो। वरना मेरी चहेती मलकाकी शानमे ऐसी बद-कलामी न करते। जानते हो इस गुस्ताखीकी सजा क्या होगी।"

सेठ-पुत्रने बेझिझक जवाब दिया—"जानता हूँ आलीजाह! पहले मुझे तीरोसे मारा जायगा, फिर मेरी खालमे भुस भरवाकर चौराहेपर रखा जायगा। मगर मै मजबूर हूँ, अपने हुनरमे खौफकी वजहसे दाग नही लगा सकता।"

"नमकहराम! ज़बान बन्द रख, जानता नही, यह शाहे-ईरानकी दुख्तरे-आला है।"

"इस हकीकतसे कौन काफिर मुनकिर है? मगर किसके वतनसे

जलवागर हुई है, यह राज़ मालूम कर लेनेपर जो चाहे सजा दे, किवल-ओ-कावाको अख़्तियार है।"

जाँच करनेपर मालूम हुआ कि मलकये-ईरानको औलाद नहीं होती थी। उधर एक वेश्याको शाहे-ईरानका गर्भ रह गया था। शाह नहीं चाहता था कि उसकी लडकी वेश्यापुत्री कहलाये। अत उसने चुपके-चुपके ऐसा प्रवन्ध किया कि वेश्याके प्रसव करते ही वह लडकी मलकाके पास मँगवा ली गई और मलकाको पुत्रीरत्नकी प्राप्ति हुई है, जनतामे यह घोषणा कर दी गई थी।

वादशाहने सेठ-पुत्रसे इस परीक्षाका आधार पूछा तो उसने वतलाया कि सरपर हाथ रखनेसे उनकी तमकनत, गर्मी, अकड, वाँकपन आदिकी हल्की-जुम्बिशसे मै भाँप लेता था कि कौन किस जातकी है। जव मलकये आलमके सरपर हाथ रखा तो वे कुछ ऐसी शोखी और अदासे उछली, जैसी कि वेश्याओमे हुआ करती है।"

वादशाह सेठ-पुत्रपर वहुत खुश हुआ और उसकी भी खुराकी दूनी कर दी।

वादशाहको एक रोज सनक सवार हुई तो अपनी परीक्षाके लिए चौथे सेठ-पुत्रको वुला भेजा। एकान्त कमरेमे वादशाह और सेठ-पुत्रके अतिरिक्त और कोई न था। वादशाहकी इच्छा प्रकट होनेपर सेठ-पुत्र वोला—"जानकी अमान मिले तो अर्ज करूँ कि मेरे भाइयोने तो अपने हुनरमे दाग लगाया जो हाथ लगाकर वस्फ वयान किये। मै तो हुजूरको दूर ही से वता सकता हूँ कि आप नानवाईकी औलाद है।"

वादशाहके गैज़ो-गज़वका क्या कहना? मगर तीन भाइयोकी परीक्षा ले चुका था। भन्नाया हुआ राजमाताके महलमे पहुँचा और एकान्तमे लेजाकर रुँधे कठसे वोला—"अम्मीजान! सच कहे मै किसके नुत्फेसे हूँ।"

राजमाता अपने टेकी वलाएँ लते हुए वोली—"भला वेट, यह भी

कोई पूछनेकी वात है ? तू अपने उसी वालिद मरहूमसे है जो कि तुझसे भला ! इस जहानका मालिक था ।"

वादशाह फूट-फूटकर रोने लगा। जव वह आत्म-हत्यातक करने पर [illegible]र हो गया तो राजमाताने सब प्रकट कर दिया। उसने वताया कि किलेके सामने जो वूढा नानवाई दुकान करता है, वादशाह उसीसे है। मरहूम वादशाह आठ सालसे लडाईपर गये हुए थे। सन्तान कोई थी नही। एक दिन स्नानके वाद वाल सुखाने जो महलकी छतपर मलिका गईं तो नानवाईपर सहसा नजर पड गई। १७–१८ सालकी उम्र, गोरा-चिट्टा कसरती जिस्म, स्वच्छ कपडोमें मलवूस। देखा तो नजर टिक गई। जव-जब छत पर जाती, मलिका उसे ही देखती रह जाती। नतीजा यह हुआ कि उस नौजवानका, आना-जाना गुप्त मार्गसे महलमे होने लगा। परिणाम-स्वरूप . . ।

राजमाताके यहाँसे आकर वादशाहने खिसियाने स्वरमे पूछा—"रईसजादे ! तुमने यह राज कैसे जाना ? हम तुम्हारे हुनरकी तारीफ करते है।"

"जहाँपनाह ! इसमे तो अक्लको कुछ भी दखल नही। मामूली-सी वात है। मेरे तीनो भाइयोने जो अपने हुनर दिखलाये, वे मामूली न थे। कोई वादशाह होता तो जागीर वख्श देता। मगर आपने जागीर वख्शना तो दरकिनार, हमें गिरवीके वन्धनसे भी मुक्त नही किया। जिसपर वेहद खुश हुए, उसकी खुराकी वढा दी। खुराकका हिसाव रखना नानवाईको ही जेब देता है, वादशाहको नही।"

"जाओ हम तुम लोगोको ५० गाँव जागीरमे देते है और गिरवीके वन्धनसे आजाद करते है।"

"जहाँपनाह, वह पानी तो मुलतान वह गया। अव तो तमाम सल्तनत भी वख्श दे तो वात वनती नही। आप यकीन रखे जान चली जायगी, मगर यह राज किसी पर अयाँ न होगा।"

२४ अगस्त १९५४ ई०

जट्ट-बुद्धि

बोहरेजीके तकाजो और तानोंसे लोगोके नाकमे दम था। कर्ज़की वसूली होती किसीके बैल खुलवा लेता, किसीकी भरी खेती कटवा लेता और जिसपै कुछ न होता, उसे जेल भिजवा देता। गाँव भरमे बोहरेजीका आतक छाया हुआ था। गाँवके लोग उसका सुबह-सुबह मुँह देखना असगुन समझते, मगर गरज बावली होती है। किसीको लड़कीके हाथ पीले करनेके लिए, किसीको भात भरनेके लिए और किसीको अडी-भीडमें बोहरेजीकी मिन्नतें करनी ही पडती।

जो एक बार कर्ज-जालमें फँसता, वह जीते-जी स्वय तो निकल ही नही सकता, आगेकी सात पुश्तोके फँसनेका निमित्त भी बन जाता था। मकडीके जालेसे मक्खी भले ही निकली हो, बोहरेजीके कर्ज-जालसे कभी किसीको निकलते नही सुना।

उसी गाँवमें गिरवर जाट भी रहता था। खाता-पीता आदमी था। 'उतने पाँव पसारिये, जितनी लम्बी सौड'का वह कायल था। रूखा-सूखा जो भी मयस्सर होता, खाता और अपने भाग्यको सराहता। न कभी वह बोहरेजीके दरवाजे तक गया और न कभी उसने जरूरत ही महसूस की।

मगर एक रोज़ न जाने उसे क्या उमग उठी कि बोहरेजीके यहाँ जा निकला। बोहरेजीने उसे बडे स्नेहसे अपने पास बिठाया। उनके मनकी मुराद पूरी हुई। गाँव भरमें गिरवर ही एक ऐसा नक्कू था, जो उसे ख़ातिरमे न लाता था। न कभी रामा-कृष्णा, न कभी आना-जाना। गिरवरकी यह उपेक्षा बोहरेजीके लिए एक चुनौती थी कि इस पछीको जालमें फँसाना हँसी-खेल नही।

ऐसे स्वच्छन्द गिरवरको समीप देखकर बोहरेजीकी बाछें खिल गई।

उपालम्भके स्वरमें बोले—"कहो चौधरी! कैसे रास्ता भूल गये? भला हमारे ऐसे भाग कहाँ जो चौधरीकी सेवाका अवसर पा सकें।"

गिरवर—"वोहरेजी क्यो काँटोमें घसीटते हो? कई बार दर्शनोकी इच्छा होती थी, मगर आनेकी हिम्मत नही पडती थी कि न जाने . ।"

वोहरेजी—"हाँ भई चौधरी ठीक कहते हो। हम आदमी न हुए भेडिये हुए कि पास आते ही आपको डर लगता था।"

गिरवर—"वोहरेजी! क्यो चीटियोपर पँसेरी फेंक रहे हो? आप तो हमारे अन्न-दाता है। भला आपके पास कौन नही आना चाहेगा? सच मानिये सकोचवश ही मन मारकर रह जाता था। आज जब प्राण कठ-में अटक गये है, तभी शरणमे आनेकी हिम्मत की है।"

वोहरेजी—"ऐसी क्या बात हे चौधरी। हम तो तुम्हारे कामके लिए आधी रातको तैयार है।"

गिरवर—"क्या बताऊँ वोहरेजी! लडकीका विवाह १५ रोजमें करना है। समधीसे मैने कहा कि विवाह जाडोमें ठीक रहेगा। इतनेमें फसल भी बिक जायगी। मगर वह ज़िद पकड गया है कि शादी अभी होगी, वरना रिश्ता छोड दिया जायगा। फसल में ३-४ माहकी देर है। पास फटी कौडी नही, विवाह करूँ तो कैसे करूँ? और रिश्ता भी छोडनेको मन नही होता। घर-वर दोनो ही बहुत अच्छे है। फिर ऐसा रिश्ता कहाँ मिलेगा?"

वोहरेजी—"बस, इतनी-सी बात? जितना रुपया चाहो ले जाओ।" गिरवर चौधरीको ५०० रुपये ले जाये कुछ रोज ही हुए थे कि एक रोज मुँह लटकाये फिर वोहरेजीके यहाँ पहुँचा।"

वोहरेजी—"अरे भई चौधरी यह क्या? इतनी जल्दी रुपये क्यो लौटा लाये? अभी तो लडकीका विवाह नही हुआ!"

गिरवर—"वोहरेजी! अब यह शादी नही होगी। समधी बडा

काइयाँ मालूम होता है। हर वार नित नय खुरपेच निकालता रहता है। मने उसकी ज़िद पर इतनी जल्दी विवाह मजूर कर लिया, तो अब सदेशा भेजा है कि 'फेरोके वक्त मढे पर उल्लूका रहना लाजिमी है। हमारे कुलकी यह वहुत महत्त्वपूर्ण रीति है। मढेपर उल्लू न हुआ तो शादी हरगिज नही होगी।' मैंने इधर-उधर उल्लूकी काफ़ी खोज करायी। यहाँ तक कि ५०० रु० तक लाने वालेको देने चाहे। मगर उल्लू न मिला। लाचार रिश्ता छोडना पड़ेगा, अब और उपाय ही क्या है? आप अपने रुपये व्याज समेत वापिस ले लीजिये।"

फँसे हुए आसामीको वोहरेजी यूँ निकल जाने दे तो फिर साहूकारी कैसे चले? अत गलेमें मिठास भरकर वोले—"चौधरी इतनी जल्दी घवरानेसे कैसे काम चलेगा? धीरजसे काम लो। संसारमें ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो चाँदीके जूतोंसे प्राप्त न हो सके। प्रयत्न करोगे तो उल्लू कही-न-कही ज़रूर मिलेगा। हमें मिला तो हम ही ख़रीद देंगे।"

लाचार चौधरी रुपये वापिस ले गया। एक-दो रोज़के वाद वोहरेने देखा कि एक आदमी उल्लू वेचता फिर रहा है और उसके पीछे वच्चे तालियाँ वजाते घूम रहे हैं। वोहरेजीने उसे वुलाकर कीमत पूछी तो वोला—"हुज़र, ६०० रुपयेसे कम न लेता, मगर अब ५०० रु०में देनेको तैयार हूँ। अजीव गाँव है कि लोग उल्लूकी कदरो-मजलतसे वाकिफ नही। सिर्फ इसके पारखी आप दिखाई दिये। कान पकड़ा जो कभी इधर फिर आऊँ।"

वोहरा—"भई, उल्लूकी इतनी कीमत कौन देगा?"

उल्लूवाला—हुज़ूर! यह मनहूस कहनेको है। वरना जिसके यहाँ इसका निवास रहता है, उसके यहाँ से लक्ष्मी निकालनेसे नही निकलती। लक्ष्मीको यह जानवर इतना प्यारा है कि वह इसके सिवा किसी पर सवारी नही करती। इसीलिए वहुत-से लोगोंमें यह रिवाज है कि फेरोके वक्त वे उल्लूको मढे पर वाँध कर रखते हैं। अगर किसी वजहसे उल्लू न मिले

तो वारातें फेरे डाले वगैर वापिस लौट जाती है। मैंने ख़ुद एक हजारमें एक उल्लू पारसाल बेचा था। यह तो वक्त-वक़्तकी वात है कि आज ६०० रुपयेमें भी मँहगा समझा जा रहा है। लगनके दिनोंमें मिलता ही कहाँ है? हिमालयके जगलोंमे जा छिपता है। चार महीने जाल डाले वैठा रहा, तब यह फँसा है।"

चौधरीकी वातका समर्थन उल्लूवालेसे भी सुना तो ४५० रुपयेमे वोहराजीने उल्लू ख़रीद लिया कि चलो ५०० रुपयेमें चौधरीको भेडा जायगा।

उल्लूवालेको गये व मुश्किल ५-७ मिनिट हुए होंगे कि चौधरी फिर मुहर्रमी शक्ल वनाये नाजिल हुए और वोले—"वोहरेजी अपना रुपया आप वापस ले ले। मुझे पुख्ता खवर मिली है कि लडकेको मिरगी आती है, मै अब यह रिश्ता हरगिज़ नही करूँगा।"

वोहरोजीको काटो तो खून नही। उल्लूवालेकी तलाशमें चारो तरफ आदमी दौडाये, मगर वह न मिला। वोहरेजी ४५० रु०का चकमा खाकर वड-वड़ाये—"हम गाँवभरको उल्लू वनाते थे, यह गँवार हमे उल्लू वना गया।"

सितम्वर १९५४ ई०

• • •

इतवारवाले बाबूजी

नरेन्द्रबाबू बेकार महकमेमें कई वर्ष बेगार ढोनेके बाद किसी तरह देहलीमे नौकरी तो पा सके, मगर सर छिपानेको मकान न पा सके। आखिर दिल्लीसे १३ मील दूर गाजियाबादमें रहनेको विवश हुए। जनरल ड्यूटीमें प्रातः ७॥से ११॥ और दोपहर २ से ५॥ बजे तक खटनेके लिए मुँह अँधेरे ही बेचारे ट्रेनसे दिल्ली जाते, तो बच्चे सोये हुए रहते और रातको जब ९-१० बजे वापिस आते, तब तक बच्चे सो जाते। इतवारकी छुट्टी वाले रोज ही बच्चोसे हँस-बोलकर जी बहलानेका अवसर मिलता।

इसी तरह दिल्ली-गाजियाबादके चक्कर कोल्हूके बैलकी तरह काटते हुए दिन गुजर रहे थे, कि एक रोज ड्यूटी पर यकायक तबियत खराब हो जानेकी वजहसे दिनमें ही घर वापिस आना पड़ा। बडा बच्चा स्कूल गया हुआ था। दरवाजेपर दस्तक सुनकर पत्नीने छोटे बच्चेको भेजा ताकि वह दरवाजा खोलकर मालूम करे कि आगन्तुक कौन है? बच्चेने दरवाजा खोलकर देखा तो बोला—"माँ, इतवार वाले बाबूजी आये है।"

१४ मार्च १९५५ ई०

• • •

ख़तका मज़मूँ भाँप लेते हैं....

शाही हलालख़ोरी[1] किलेसे कमाकर अपने डेरेपर पहुँची तो दुहत्तड मारकर रोना-पीटना शुरू कर दिया। रोनेका सबब बार-बार दरियाफ्त करनेपर ब-मुश्किल सुबक-सुबककर बोली कि—"मै तो विधवा हो गई।"

घरवाले सुनकर सकतेमे आ गये कि हे भगवान् आज इसको हो क्या गया है? पतिके होते हुए भी आज यह ऐसे अशुभ वचन क्यो बोल रही है? हलालखोरने उसे एकान्तमे ले जाकर सब माजरा सुना तो वह तत्काल किले पहुँचा और बादशाहके समक्ष जाकर ज़ार-जार रोने लगा।

बादशाह अकबर आहो-गिरियाँका सबब दरियाफ्त फरमा रहे है और हलालखोर है कि उसकी सुबकियाँ थमनेमें नही आ रही है। बिलख-बिलखकर रोये जा रहा है। बादशाह-द्वारा काफी तसल्ली-ओ-तशफ्फी दिये जानेके बाद रुँधे हुए स्वरमें बोला—

"जहाँपनाह! जानकी अमान मिले तो अर्ज करूँ?"

"बेख़ौफो-ख़तर मुद्दआ-ए-दिल बयान कर सकते हो।"

"रुस्तमे जमाँ! यह कमतरीन बूढा जरूर है, मगर बुजदिल नही है। इसकी नसोमें चगेजी नमक लहरें मार रहा है। मैदाने-जगमें यह भी सुर्खरू होनेकी तमन्ना रखता है। मगर "

"मगर क्या?"

---

१. भगी-चूहड़ा-शब्द बहुत अपमानजनक है। ये लोग जितनी कठिन जनताकी सेवा करते हैं, उसको देखते हुए उक्त शब्द उच्च समाजकी कृतघ्नताके द्योतक थे। अकबरने इसे महसूस किया और उसने इनके लिए 'हलालख़ोर' शब्द प्रचलित किया।

"खुदावन्दा ! गुलामकी लडकीकी शादीके सिर्फ १५ रोज रह गये है। एक ही लड़की है। दिली तमन्ना थी कि मरनेसे पेश्तर उसके हाथ पीले देख लूँ।"

"बहुत मुबारक खयाल है। शादीके अखराजात शाही खज़ानेसे किये जायेगे। तफ़ुक्करातमे मुब्तला होनेकी कतई जरूरत नही।"

"परवर्दिगार! गलामकी ख्वाहिश थी कि अपने जीते जी हुजूरकी लौडीका विवाह कर सकता।"

"इन्शा अल्लाह, तुम्हारी ख्वाहिश ज़रूर पूरी होगी।"

"किवल-ओ-कावा ! बेअदबी मुआफ, जब आलीजाह मेवाड पर चढाई कर रहे है तो यह दिली तमन्ना पूरी कैसे होगी ? गुलाम तो सफरमे . !"

"ओह।"

अकबर हैरान कि मनकी बात अभी लब तक भी नही आई, वजीरो-सिपहसालार तकपर अयाँ नही हुई। फिर यह राज़ हलालखोरको कैसे मालूम हुआ ? झिडककर बोला---

"दीवाना हुआ है क्या ? यह बे-सिर-पैरकी बाते क्या बक रहा है"

आकाये-जहाँ, गरीब परवर ! हलालखोरोका कयास गलत नही हो सकता। आपके पेशाबसे चिराग जलता है तो जहाँपनाह आपकी हलालखोरी भी उसी पेशावमें खेलकर बूढी हुई है।"

"पहेलियाँ न बुझाओ, आखिर बात क्या है, साफ़-साफ बयान करो।"

"जहाँपनाह जाए-जरूर (शौचालय) से बाहर तशरीफ लाये तो मेवाडकी तरफ रौनक अफरोज होकर मूँछोपर ताव देने लगे। हलालखोरीने देखा तो वह सब माजरा भाँप गई। औरत जात है हुजूर, घबरा गई कि मेरा हलाल-खोर भी लश्करके साथ जायेगा, तब लडकीकी शादी क्या खाक होगी।"

"अच्छा यह बात है ! हम हलालखोरीकी इस दूरन्देशीसे बहुत मुता-स्सिर हुए ! खबरदार यह राज किसीपर अयाँ न होने पाये ! हम शादीतक मेवाड़के कूचका इरादा मुल्तवी करते है।"

२० जुलाई १९५४ ई०

क़र्ज़ की अदायगी

एक साहूकारके एक जाटपर मुद्दतोसे चार-सौ रुपये कर्ज थे। कर्ज चुकानेके वायदेपर वायदे करता, परन्तु देता एक पैसा भी न था। एक रोज साहूकारने तनिक कडा तकाजा किया तो बोला--"ऐसे जीनेसे तो मरना अच्छा। मैं पेडसे कूदकर जान दिये देता हूँ।"

जाट लपककर सामनेके ऊँचे पेडपर चढ गया तो, साहूकार उसे आत्म-हत्यापर उतारू देख घबराकर बोला--"अच्छा चौधरी, तुम पेडसे उतर आओ, मैं दो-सौ रुपये छोड दूँगा।"

चौधरी पेडसे उतर आया तो लाला बोला--"अच्छा चौधरी, बाकी दो-सौ तो दिलवाओ।"

जाटने अपने कपडे ठीक करते हुए जवाब दिया--"लाला घबरा नही, जैसे यह दो-सौ उतार दिये, वैसे ही एक दिन वे भी उतार दूँगा।"

६ अप्रैल १९५५ ई०

• • •

इज्जत रह गई

यह उन दिनोकी बात है, जब कि यहाँ अंग्रेजी राज्यका बोलबाला था।

एक देहाती लगानका रुपया तहसीलमें जमा कराने गया। उसने निश्चित लगानसे पाँच रुपये कम अफसरकी मेजपर रखे तो अफसर झल्लाकर बोला—

"लगान पूरा दो, यह परचूनियेकी दुकान नही है कि भाव-ताव किया जाय।" मगर देहाती अपनी बातपर अड़ा रहा और यही कहता रहा कि "गरीब आदमी हूँ। अब मेरे पास देनेको कौडी भी नही है।"

देहातीकी जिदसे तग आकर अफसरने चपरासीको हुक्म दिया—"इसे कमरेमे लेजाकर तनिक समझाओ।"

चपरासी अफसरकी बानी समझता था। वह देहातीको कमरेमे ले गया और ३-४ हाथ उसके कसकर मारे तो देहाती अपनी अण्टीमेंसे पाँच रुपये देते हुए बोला—"भई, वाह, यह तो गनीमत हुई जो मेरे पास पाँच रुपये मौजूद थे, वरना इज्जत जानेमे क्या कसर रही थी?"

१४ जून १९५५ ई०

• • •

ज़ात जानेमें क्या देर लगती

एक सज्जन ताडीखानेमे बैठे पी रहे थे। ताडीकी हॉडी सामने रखी हुई थी। पीते-पीते तलछट बची तो चौककर बोले—

"ठेकेदार! हाँडीके अन्दर यह क्या पड़ा हुआ है?" ठेकेदारने हाँडीको देखा तो उसमें रोटी पडी हुई थी। उस गली हुई रोटीको निकालते हुए ठेकेदारने कहा—"मालूम होता है रातको किसी बच्चेने रोटी खाते-खाते बची हुई रोटी डाल दी, ताकि मुझे पता न चले।"

पियक्कड तनिक सजीदगीसे बोला—"वाह भई वाह, तुम भी खूब आदमी हो। किसीका धर्म, ईमान बिगाडते तुम्हें तनिक भी सकोच नही होता। यह तो खैरियत हुई कि मै था। कोई और होता तो ज़ात जानेमें क्या देर लगी होती?"

१४ जून १९५५ ई०

• • •

'द' और 'ल' की करामात

एक ब्राह्मण जो लेनेके अतिरिक्त देना सीखे ही नही थे, उन्हे 'दे' शब्दसे बहुत चिढ थी। एक रोज अपने गुरुके पास पहुँचकर बोले—"गुरुजी! आज मेरे तनिक पाँच जूते तो लगाइये।"

गुरुजी—"क्यो, क्या बात हुई ?"

"आज रातको स्वप्नावस्थामें मेरे मुँहसे वर्जित शब्द('द')निकल गया।"

'अरे मूर्ख यह तूने क्या किया ?"

"हाँ गुरुजी, अपराध तो बन ही गया। बात यह हुई कि मुझे स्वप्नमें आभास हुआ कि चोर घरमे घुसने वाले है, बस घबराहटमे घरवालीसे कह उठा—जरा जल्दीसे दरवाजा बन्द कर "देना।"

"बडा अज्ञानी है रे तू, फिर इस वर्जित शब्दको मेरे सामने भी पुनः बोल रहा है। "बन्द कर लेना" कहनेमे तेरा क्या बिगडता था, जो तैने ऐसी भूल की।"

× × × ×

यही ब्राह्मण देवता एक बार अन्धे कुएँमें गिर गये। कुआँ गहरा नही था, फिर भी बाहरी सहायताके बगैर निकल नही सकते थे। शोर सुनकर कई आदमी दौड आये और हाथ बढाकर कहने लगे—"पण्डितजी, अपना हाथ दीजिये, हम खीच लेते है।" लेकिन पण्डितजीने अपना हाथ नही दिया और कुएँमें चुपचाप पडे रहे। लोग हैरान थे कि भला मानुस कुएँमें तो पडा हुआ है, परन्तु हाथ नही देता। इतने मे ही उनका एक पडोसी आ पहुँचा जो उनके स्वभावसे परिचित था। आते ही उसने कहा—

"पण्डितजी, हमारा हाथ अपने हाथमें लो हम अभी खीचे लेते है।" इस तरकीबसे पण्डितजी तुरन्त बाहर खीच लिये गये।

१६ जून १९५५ ई०

पठान और जामुन

एक पठानने चार पैसेकी जामुनें ली तो उसमे एक भौरा भी आगया।
पठानने बगैर देखे ही जामुनें मुँहमें डाली तो भौरा भी मुँहमे चला गया और दाँत लगने पर ची-ची करने लगा। पठान उसे कुचलते हुए बोला—
"ची कर या चूँ कर तुझे खाऊँगा जरूर, तुलकर आया है।"

१६ जून १९५५ ई०

सब्र करो

एक लालाजीकी भैंस मर गई तो उन्हे बहुत दुःख हुआ। यहाँ तक कि उन्हें समझानेके लिए उनके इष्ट-मित्रोको आना पडा। किसीने समवेदना प्रकट की, किसीने अफसोस जाहिर किया, किसीने सान्त्वना देते हुए इस घटनाको विस्मरण करनेकी सलाह दी। इन्ही मित्रोमें-से एक तसल्ली देते हुए बोले—"भाई फिक्र और रंज करनेसे क्या होता है, अब वह किसी हालतमें भी जीवित नही हो सकती। सब्र करनेसे ही काम चलेगा। आजकल हम दोनो यारो पर बुरे ग्रह लगे हुए है। इधर किसीने तुम्हारी भैंस मारी, उधर मेरे सरकी काली जूँ मेरी घर वालीने ही मार दी। सिवाय सब्र करनेके और क्या कर सकता था? मेरी-तुम्हारी एक जैसी स्थिति है, अत. भाई तुम भी मेरी तरह सब्र करो।"

१६ जून १९५५ ई०

गधेका विश्वास

उदमी जाटको अपना कुछ सामान ढोनेके लिए गधेकी जरूरत हुई तो वह अपने पडोसी छिद्दा कुम्हारसे मागने गया। गधा अन्दर घर में बँधा हुआ था। मगर न देनेकी नीयतसे छिद्दा बोला—"चौधरी! गधा बाहर चरने चला गया है, रात तक आवेगा। घर पर होता तो तुम्हे देने में मुझे अपार हर्ष होता?"

इतने में ही अन्दर बँधे हुए गधे ने पञ्चम स्वर में अलाप लिया, तो जाट बोला—"क्योजी, गधा तो अन्दर मौजूद है, फिर भी ये बहाना?"

कुम्हार बोला—"वाह चौधरी, तुम भी खूब हो। गधेकी जबानका विश्वास करते हो और मेरा कुछ भी नही!"

दिसम्बर १९५३ ई०

ज़िन्दादिली

गर्मियोके दिन थे। औरोकी तरह सोहन भी रात्रिको छतपर सोया हुआ था कि वह पेशाबको उठा तो अर्द्धनिद्रामें मुंडेरसे पाँव जो फिसला तो मकानसे लगे हुए ईखके खेतमे जा पडा। गरीबकी हड्डी-पसली टूट गई। ब-मुश्किल उसे घर लाया गया। समवेदना प्रकट करने वाले आये तो वह बोला—"आप केवल मेरी चोटको ही देखते हं, यह नही देखते कि मुझे वहाँ गन्ने कितने चूसनेको मिले? गिरता नही तो गन्ना मुफ्त चूसनेका अवसर कैसे मिलता?"

२ जुलाई १९५३ ई०

शहर बनते-बनते रह गया

गाँवका एक देहाती हरिजन शहर देखने पहुँचा तो अपने किसी गरीब रिश्तेदारके यहाँ ठहरा। शहरकी घनी आबादी और वह भी गरीबोके मुहल्लेमें। उसे वहाँ सबसे अजीब और अनोखी बात यह देखनेमे आई कि रसोई बनानेकी जगहमें और गन्दगी फेंकनेके स्थानमें विशेष फासला नही है। दोनो स्थान एक-दूसरे से सटे हुए है। क्या गलियो, क्या बैठकखानो, क्या रसोईघरोमें, सर्वत्र गन्दगी-ही गन्दगी नज़र आई। बेचारा देहाती २-४ रोज उन गलियोकी सैर करके गाँव चला गया।

गाँव पहुँचते ही उसने रसोईघरके नजदीक शौचालय बनाना चाहा तो घरवालोने उसे रोका। उनके रोकने पर जब वह नही माना तो वे गाँवके पचोको बुला लाये। पचोके समझाने-बुझाने पर वह बोला—"खैर, जब आप मना करते है तो न बनाऊँगा। वरना मै तो आज ही गाँवको शहर बनाकर छोडता। फिर किसीको शहर देखनेके लिए इतनी दूर न जाना पडता।

२ जुलाई १९५४ ई०

ऊँटकी कल

किसी ऊँटसे एक आदमीने पूछा—क्यो भई तेरी पूँछ टेढी क्यो है?"

ऊँट झल्लाकर बोला—"तू अजीब आदमी है? भलेमानस, यह तो बता मेरा अग सीधा कौन-सा है? पाँव मेरे टेढे, पीठ-पेट मेरे टेढे, गर्दन मेरी टेढी, जीभ-आँख मेरी टेढी! फिर तू सिर्फ पूँछ टेढी होनेका ही सबब क्यो पूछ रहा है? मै तो हर कोणसे टेढ़ा हूँ।"

जनवरी १९२६ ई०

भैंसके आगे बीन

एक देहाती अकस्मात् किसी संगीत-सम्मेलनमें पहुँच गया और गवैयेको अलापते देख बिलख-बिलखकर रोने लगा। अपने संगीतका इतना सफल प्रभाव होते देख गायक और अधिक अलाप लेने लगा। अलापके साथ-साथ बिलखना भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। गायकके बाद समीपमें बैठे हुए सज्जनने पूछा—"चौधरी तुमतो संगीतसे बहुत प्रभावित हुए। मालूम होता है इस रागसे तुम काफी परिचित हो।"

चौधरी बोला—"भाई मैं इस रागसे खूब परिचित हूँ। पारसाल मेरा बकरा भी इसी तरह बिल-बिलाकर मर गया। मैं क्या इस विलापको भूल सकता हूँ? जब-कभी सुन लेता हूँ, सर धुनने लगता हूँ।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

समझकी बलिहारी

एक मीरासी थकाहारा अपने गाँव लौट रहा था कि रास्तेमें नमाज़का वक्त हुआ तो नमाज़ पढनेके बाद दुआ मागते हुए अर्ज़ किया—

"या अल्लाह मैं भी तेरा बन्दा हूँ। मुझपर भी अपनी रहमतकी बारिश कर। जिस हालमें तूने रख छोडा है, तू सब जानता है। न भर पेट खाना, न ढगका कपडा, फिर भी दिन-रात तेरा शुक्रिया अदा करता हूँ। तेरी बदौलत दिन गुजर रहे हैं। तैंने दुनियाको कैसी-कैसी नेमतें बख्श रक्खी हैं, मुझे इसका गिला नही। मैं तो तेरी रज़ा (इच्छा) में ही राज़ी हूँ, और कुछ न दे, मगर एक छोटा-सा घोडा तो इनायत फरमा। ताकि रिज्ककी तलाशमें गाँव-गाँव भटकते-भटकते टखने तो न सूजे"।

दुआ मागकर मीरासी अभी मुसल्ला उठाने भी न पाया था कि सामने थानेदारको खडा देखकर काँप उठा। थानेदारकी घोड़ीने रास्तेमें बच्चा दे दिया था। वह किसी बेगारीकी तलाशमें ही था कि मीरासी पर उसकी नज़र पडी तो आदेश भरे स्वरमें बोला—"ज़रा इस घोड़ीके बच्चेको काँधे पर उठाकर साथ-साथ थाने ले चल।"

मीरासीकी क्या मजाल जो चूं-चरा करता। चुपचाप नवजात घोडीके बच्चेको कन्धेपर लाद लिया और मन-ही मनमें बडबड़ाया—"या अल्लाह तू भी कैसा दिल्लगीबाज़ है? घोडा मैंने अपनी सवारीके लिए माँगा था और तूने मुझपर सवारी गाँठनेको घोडा भेज दिया। तेरी समझकी भी बलिहारी है।

७ अगस्त १९५५ ई०

नूर टोकरों भर बरसा

एक नौ मुसलिम देहातीने मसजिदमें मौलवीसे सुना कि—"हर मोमिनको नमाज पढना लाज़िम है। नमाज़से चेहरेपर नूर बरसने लगता है। अगर कही वज़ूको पानी न मिले तो मिट्टीसे वज़ू करके नमाज पढनी जायज़ है।"

नया मुसलमान अल्लाह ही अल्लाह पुकारता है। वह पुश्तैनी मोमिनोंसे भी बढकर अपनेको मोमिन साबित करना चाहता है। इसी रवायतके अनुसार नौ मुसलिम देहाती भी प्रात.कालीन नमाज पढनेके लिए मुँह अँधेरे उठा। घरमे पानी न था अत उसने मिट्टी लेनेको हाथ बढाया तो कोयलेकी बुरकी पर हाथ पड गया। और अनजानेमें वही हाथ मुँहपर फेर लिया। नमाज़ पढ़ते-पढ़ते दिन निकल आया था। बीबी उनको एकटक निहार रही थी।

नमाज पढने और दुआ मागनेके बाद देहाती मुसकराते हुए बोला—"अभीसे क्या घूरती हो? दस-पाँच रोज नमाज पढ लूँ, तब चेहरेका नूर देखना।"

बीबी मुँह बिचकाकर बोली—"अगर इसीको नूर कहते हैं तो घटा बाँधकर आया है। टोकरो भरके बरसेगा। सँभाले सँभाल न सकोगे।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

बातमें बात निकलती है

एक राजपूत हल चला रहा था कि उस तरफसे गुजरने वाले उसके किसी पडोसीने टोका —"ठाकरां! हल टेढा चला रहे हो, तनिक सीधा रक्खो।"

राजपूत अपने हलको बजाय सीधा करनेके बोला—"यार, तेरे व्याहमें पारसाल ऐसे लड्डू खाये कि अभी तक पेटमें दर्द हो रहा है।"

पडोसीने पूछा—"भई, यह हलके टेढेपनसे मेरे व्याहका क्या सरोकार?"

राजपूतने हल चलाते हुए जवाब दिया—"भाई, बातमें-से-बात यूं ही निकलती है।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

१५० वीं तारीख़

एक अनपढ़ शहरी मुसलमान देहातमे जाकर वसा तो उसकी लम्बी दाढी, जबीके दाग और बातचीतके तौर-तरीकोसे गाँववाले उसे मौलवी समझ बैठे। लोग उससे चाँदकी तारीख पूछने आते तो वह तारीख वता देता। तारीखे वतानेकी उसने यह तरकीव निकाली हुई थी कि द्वितीयाको जव चन्द्रमा निकलता, लोटेमे वकरीकी एक मीगन डाल देता और प्रत्येक दिन उसमे एक-एक मींगनकी वढौतरी करता। पूछनेवाले मोमिनको वाहर बिठाकर अन्दर जाता और लोटेमे जितनी मीगनी पाता वाहर आकर चाँदकी उतनी ही तारीख वता देता। गाँववाले उसकी इस विद्या-बुद्धिसे वहुत प्रभावित थे।

कुदरत खुदाकी एक रोज़ मौलवीकी वकरी कमरेमे घुस आई और उस तारीखी लोटेको मींगनोसे भर दिया। शामको एक मर्दमोमिनके तारीख पूछने पर मौलवी साहवने अन्दर जाकर मेगनी गिनी तो वहुत चकराये। वहुत पसो-पेशके वाद वाहर निकलकर वताया कि आज चाँदकी १५० वीं तारीख है।

मोमिन हैरतसे वोला—"मौलवी साहव, कही १५० वीं तारीख भी होती है?"

मौलवी साहव अपनी दाढी पर हाथ फेरते हुए वोले—"खुदा जानता है, तारीख तो आज चाँदकी तीन सौवी है, मगर मैंने तुम्हारा लिहाज रखते हुए १५० कम वताई हैं।"

७ अगस्त १९५५ ई०

उस्तादाना लटका

एक शिष्यने लालबुझक्कडसे पूछा—"गुरू, कौवेको किस तरकीबसे पकडना चाहिए? एक आँख होते हुए भी इतना चालाक और चौकन्ना पछी है कि कुछ न पूछिये।"

लालबुझक्कड विश्वासभरे स्वरमे बोले—"बेटा, तरकीब तो बहुत आसान बताये देता हूँ। यदि फिर भी न पकड सको तो दुर्भाग्यके सिवा और क्या कहा जा सकता है। लो तनिक ध्यानसे सुनो। एक मोमबत्ती जलाकर चुपके-से उसके सर पर जमा देना। मोम गल-गलकर उसकी आँखमे पडनेसे जब वह अन्धा हो जाय, तब हाथ बढाकर बा-आसानी उसे पकड लेना।'

शिष्यने निवेदन किया—"गुरू, यदि कौवा मोमबत्ती अपने सरपर रखने दे तो फिर इतने झझटकी क्या आवश्यकता है? सरपर मोमबत्ती रखनेके बजाय उसका सर ही क्यो न पकड लिया जाये?"

लालबुझक्कड सजीदगीसे बोले—"बेटा, उपाय तो तुम्हारा भी खूब है, मगर इसमे उस्तादाना लटका नही है।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

नानीका लतीफ़ा

कुछ व्यक्ति इस प्रवृत्तिके होते है कि अपराध करने पर पछतावेके बजाय उन्हे गर्व होता है, और उन कुकृत्योका बखान करते हुए वे आनन्दका अनुभव करते हैं।

हम बच्चोसे जब कोई नुकसान हो जाता, परस्पर मार-पीट कर बैठते, जिद, ढीठता या उद्दण्डता पर उतर आते और भूल माननेके बजाय अपने पक्षको उचित ठहरानेका प्रत्यन करते तो मेरी नानी जो कि शारीरिक दण्ड देना कभी जानती ही न थी, निम्न लतीफा कुछ इस ढगसे कहा करती थी कि सुनकर प्रकट रूपमे तो कम, परन्तु मन-ही-मनमे हम बहुत लज्जित होते थे।

एक बेहयाकी पीठपर पेड निकल आया तो अड़ोसी-पडौसी उसके पास समवेदना प्रकट करनेके लिए पहुँचे। उनको देखकर बेहया शर्मिन्दा होनेके बजाय शेख़ीसे बोला--"इसमे दु खकी क्या बात है? यह तो अच्छा ही हुआ। अब धूपसे हिफाजत भी रहेगी और दुनियामे नाम भी होगा।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

शाबाश तेरी हिम्मत

एक गँवार किसी शहरी बारातमें गया तो वहाँ वेश्या-नृत्यका भी आयोजन था। वेश्याको इतने पुरुषोंमें नाचते देख उसे बहुत अचम्भा हुआ। उसके तनिक विश्राम लेनेपर चुपके-से पूछा—"चो लाली, तेरो अभी व्याह हुओ कि नाय।"

वेश्याने नकारात्मक गरदन हिला दी।

गँवार रातभर आश्चर्य चकित-सा महफिलमें नृत्य देखता रहा। वेश्याकी एक-एक अदापर लोग लहालोट होते। उसकी मुसकानपर लोग छेडते, आवाजे कसते तो वह उत्तरोत्तर शोख और चचल होकर थिरकने लगती। तमाशाइयोंके मजाकका कभी ऐसा बरमहल जवाब देती कि लोग बगले झाकने लगते और कभी इस तरह झेपती कि कलेजा मसोसकर रख देती।

गँवार रातभर दम-ब-खुद उसकी यह सब दीदा-दिलेरी देखता रहा। प्रात काल महफिल समाप्त होने पर उसके पास जाकर चुपके-से बोला—"सावास तेरे माता-पितान कूं। जिनने तोय जनम दियो। इतने मरदनमेतें तू अपनो धरम बचायके अछूती जा रही है। सावास तेरी हिम्मत कूं।"

७ अगस्त १९५५ ई०

• • •

चकमा

एकवार एक सज्जन चाँदनी चौकमे कूचा रहमानके पास खडे हुए सौदा खरीद रहे थे। सामान खरीद चुकने पर बटुएमे-से रुपया निकालकर उन्होने दूकानदारको दिया और बाकीके रुपये दूकानरदारके लौटाने पर वह जो गिनकर बटुएमे रखने लगे तो बटुआ गायब। ग्राहकने समझा यह काम दूकानदारके सिवाय और कोई नही कर सकता। अत. वह उसके सिर हो गया। दूकानदार परेशान कि या परमात्मा क्या करूँ, व्यर्थमे वदनाम हुआ जाता हूँ। देखते-देखते भीड इकट्ठी हो गयी। इतने ही मे एक हज़रत तशरीफ लाये और बोले—

"अमां, क्या बात है? क्यो नाहक लड रहे हो?"

बटुआ खोये जानेका हाल बताने पर वही हज़रत एक बटुआ दिखाकर बोले—"देखिये, यह तो आपका बटुआ नही है।"

ग्राहक महोदय बटुएको हाथमे लेकर और उसमेकी रकम गिनकर बोले—"बेशक, यही मेरा बटुआ है। अच्छे मियाँ तुम्हारे हाथ यह क्योंकर लगा?"

मियाँ साहब ज़रा मुसकराकर बोले—"तुमने बटुएमे-से रुपया-निकालकर दूकानदारको दिया और नावाँ गिननेके वक्त उसे दूकानपर रख दिया। बस तुम नॉवाँ गिननेमे मशगूल हुए और मैंने इस खयालसे कि इनको यहाँके उठाईगीरोसे होशियार करनेके बहाने ज़रा नसीहत दे दूं, चुपके-से इस तरह खिसका लिया और चट इस पासकी गलीमे घुसकर इस तरह गायब हो गया।"

ग्राहक महोदय और खड़े हुए तमाशायी यह समझते रहे कि मियाँ साहब बटुआ उड़ानेका करतब दिखा रहे हैं, गलीमे-से अब आते होंगे, किन्तु यह हज़रत इस बार सचमुच ही गायब हो गये। ग्राहक महोदयने जो

घबराकर देखा तो वह गली दूसरी तरफ बल्लीमारानको भी निकल गई थी। वहाँ उन हज़रतका कही पता तक न था। हाँ, खाली बटुआ पडा हुआ अपनी किस्मतको अलबत्ता रो रहा था। ग्राहक विचारा सर पीटकर रह गया। उसीके हाथोमे-से इस सफाईसे बटुआ लेकर चम्पत हो गया। अब वह किसीसे क्या कह सकता था ? तमाशायी उठाईगीरेके इस फनकी दाद दे रहे थे और ग्राहक खडा रो रहा था।"

जनवरी १९३३ ई०

● ● ●

अवसरवादी

एक मोमिन नमाजसे बहुत घबराता था। मगर कुछ ऐसे वातावरणमे रह रहा था कि छुटकारेका कोई उपाय नही था। रोजानाकी पंज-वक्ती नमाज से वह तग आ चुका था कि एक रोज नमाजके बाद मौलवी साहबने वाजमे फरमाया—

"मोमिनो मत पढो नमाज, जब कि तुम नापाक हो।"

उक्त हजरत मौकेकी तलाशमे थे ही, नमाज़ पढनी कतई तर्क कर दी। एक रोज मौलवी साहब रास्तेमे मिले तो उन्होने पूछा—"क्यो हज़रत, कही बाहर गये हुए थे क्या ?"

"नही तो"

"क्या हुजूरके दुश्मनोकी तबियत कुछ नासाज़ थी ?"

"जी नही, खुदाका शुक्र है।"

"कई रोजसे मसजिदमे दिखाई नही दिये।"

"मसजिदमे आकर क्या करता ?"

"करते क्या ? नमाज़ पढते ! वाज़ सुनते।"

"नमाज पढता ? नमाजको तो आपने उस रोज़ वाजमे मना कर दिया था—'मोमिनो, मत पढो नमाज' यह आपने कुरानकी आयत पढकर हुक्म सुनाया था।"

"अजी हजरत, उससे आगेका भी जुमला तो सुना होता।"

"मौलवी साहब ! आप भी बहुत भोले है। जब पहिले जुमलेसे ही काम निकल जाय, तब दूसरा जुमला सुननेके क्या मानी ?"

१९ सितम्बर १९५५ ई०

• • •

दोस्तीका भरम

एक गाँवमे चार यार बहुत मशहूर थे। उनमे-से एक ब्राह्मण, दूसरा वैश्य, तीसरा जाट और चौथा नाई था। गाँव भरमे उनका दब-दबा था। चारो यार साथ रहते थे और जहाँ भी जाते रोब जमा लेते। मन-मानी करते, उत्पात मचाते, परन्तु कोई चूँ भी न करता। किसकी शामत आई थी जो उनसे झगडा मोल लेता। पैसेका, बुद्धिका, लाठीका, चतुराईका सभी तरहका जोर था।

एक रोज किसी मेलेमे जाते समय रास्तेके खेतसे चारो यारोने चूसनेके लिए गन्ने उखाड लिये। उनकी इस हरकत-से किसानको बहुत ताव आया। "खानेके लिए दस-पाँच गन्ने माँगते तो क्या मै मना कर देता? यह तो सरासर ज्यादती है। आज इन्हे मजा चखाना चाहिए। इन्हे अपनी मित्र-मण्डलीपर बहुत घमण्ड हो गया है। मनमानी करते है, किसीको कुछ नही समझते। गाँवभरके नाकमे दम कर रखा है। आज इनका बल तोडना ही चाहिए।" सोचता हुआ किसान मुसकराकर बोला—"सरदारो, मेरी एक बात सुनते जाओ।"

चारो यार ठहर गये तो किसान बोला—"आपने बडी किरपा करी जो हमारे खेतमे पधारे। पर एक बात मुझे बहुत खटकी। ब्राह्मण देवता हमारे पूज्य, लालाजी हमारे महाजन, जाट हमारा भाई, जितने चाहे गन्ने तोडें उनका हक है। मगर मैं पूछता हूँ इस नाई कमीनेने गन्ने क्यो तोडे? आप तनिक हट जाये, मै इसे छेते बिना न मानूँगा।"

तीनो कुलाभिमानी यार देखते रहे और नाई जाटसे पिटता रहा। नाईको खेतसे निकालकर जाट बोला—"दूसरी बात मैं यह पूछूँ हूँ कि ब्राह्मण तो खैर पूज्य, जाट हुआ भाई, मगर इस लालाने गन्ने क्या समझ कर

उखाड़े ? महाजन है तो क्या हुआ ? रुपयेका व्याज नही लेता क्या ? रत्तीभर हीगके पैसे भी वसूल करता है तो फिर मेरा गन्ना मुफ्त क्यो चूसेगा ?"

ब्राह्मण देवता और जाट देखते रहे और लालाजीके तावड़तोड लात-घूँसे लगते रहे। लालाजीको खेतसे खदेडनेके बाद किसानने ब्राह्मण-देवताकी तरफ रुख किया। "क्यो रे पण्डत ! यह जाट तो अपना बिरादर-भाई कुछ ही करे, पर तैंने गन्ना क्यो तोड़ा ? जनम-मरन, व्याह-महूरत आदि वात-वातमे तू हमको ठगता रहता है। तेरा क्या लिहाज ?"

किसानने पण्डितजीको भी चपतियाकर खेतसे धक्का दिया। जाट खुश कि तीनो पिटे केवल मैं ही वचा। इतनेमे ही किसान पलटकर आया और पटखने देने शुरु किये। "क्यों वे भाई-बिरादर होकर तूने यह हरकत क्यो की ? क्या तुझे मालूम नहीं कि किसान जब अपना खून-पसीना एक करता है, तव गन्नेमे रस पडता है।"

जाट भी पिटकर वाहर निकल आया। शाम होते-होते गाँव भरमें उनकी दोस्तीका भाण्डा फूट गया और उनके रोब-दाब सब खाकमें मिल गये।

४ अक्टूबर १९५५ ई०

o ● ●

तिनकेकी ओट

"मुंशीजी! आपका साहबजादा महफिलमे बैठा शराब पी रहा है। यकीन न हो तो चलकर अपनी नजरोसे देख ले।"

मुंशीजी महफिलमे पहुँचे तो वहाँ सचमुच दौरे-शराब चल रहा था। पिताको सामनेसे आते देखा, पर इधर-उधर होनेकी कही भी गुंजाइश न थी। लाचार पास पडे तिनकेकी ओट कर ली। मुंशीजी बगैर कुछ कहे उलटे पाँव लौट आये तो चुगलखोरने पूछा—"मैंने कितनी जाँफिशानीसे उसे रँगे हाथो पकडवाया, फिर भी आपने कुछ नही कहा।"

"कहनेकी जरूरत नही समझी"।

"क्यो।"

"अभी उसकी आँखोमें लिहाज बाकी है?"

"आँखोमे लिहाज बाकी है! यह भी आपने खूब कहा! सामने बैठा पीता रहा, फिर भी कहते हैं, लिहाज बाकी है।"

"हाँ भाई, अगर छिपनेका अवसर पाता तो वह अवश्य छिप जाता। फिर भी उसने तिनकेकी ओट कर ली। यानी अभी तक वह मुझे बाप और मैख्वारीको पाप समझता है। जबतक उसमे यह समझ शेष है, उसके उद्धारकी भी आशा है। सबके सामने जलील करनेसे आँखोका लिहाज जाता रहता और उद्धारकी यह क्षीण आशा भी समाप्त हो जाती।"

४ अक्टूबर १९५५ ई०

• • •

बोये पेड़ बबूलके........

एक कंजूस था। उसने जीवन भर किसीको कुछ नही दिया। देनेके नाम पर तो वह किसीको धक्का भी नही देता था, फिर भी उसकी घुडसालसे कोई लीद उठाने आता तो वह मना नही करता था, चुप रहता था।

मरने पर वह स्वर्ग पहुँचा तो वहाँका वातावरण देखकर बहुत उत्फुल्ल हुआ। अकस्मात् दूर सामने की ओर नजर गई तो लीदका अम्बार लगा देख उसने परिचारिकासे पूछा—"स्वर्गमे वह सामने दुर्गन्धमय वस्तु क्यो ?"

"आपके भोजनके लिए।"

"क्या बकती हो ?"

"सत्य ही निवेदन किया है। यहाँका नियम है कि जो प्राणी जैसा बोता है, वैसा ही फल यहाँ चखता है। बबूलके पेड़ बोने पर यहाँ आम नही चख सकते।"

"फिर मुझे स्वर्गमे क्यो लाया गया ? इससे तो नरक ही श्रेष्ठ था।"

"वहाँ आपके लिए स्थान सुरक्षित है, परन्तु जीवनमे आपने जितना और जैसा दान-पुण्य किया है, उसकी पूर्तिके लिए यहाँ आना अवश्यम्भावी था।"

कंजूस मारे भयके बेहोश हो गया।

४ अक्टूबर १९५५ ई०

• • •
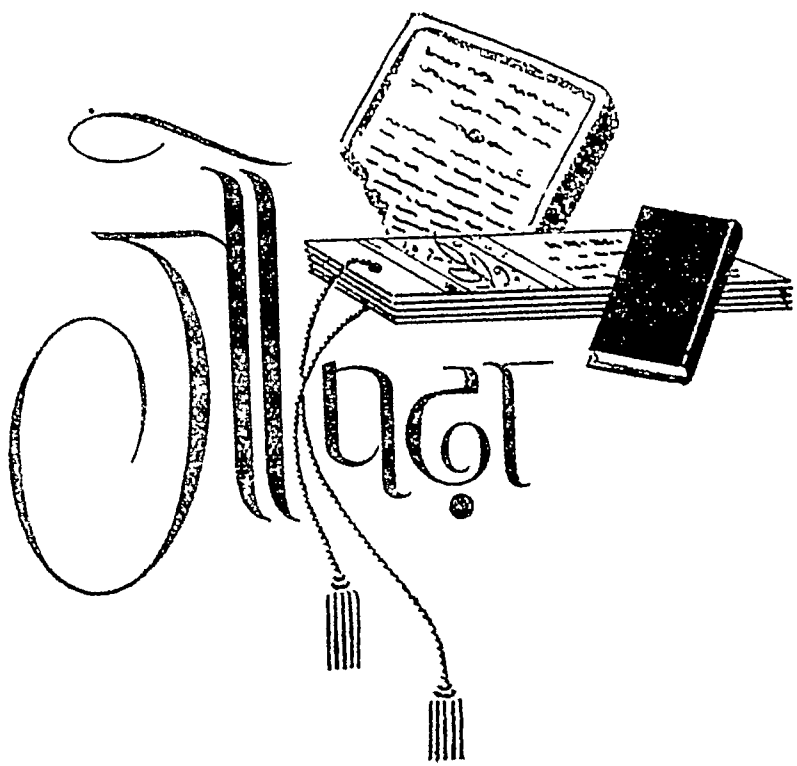
साहित्य-सृष्टाओंकी विचार-छायामें बैठकर जो पढ़ा

रावणकी सीख

रावण जब रण-क्षेत्रमे भू-लुण्ठित हो गया, तब रामने लक्ष्मणको आदेश दिया कि वह लकेशसे उसके स्वानुभव सुनकर आये। बडे भाईका आदेश होने पर भी लक्ष्मण सकोचमे पड गये। रावण-जैसे आततायीके कुकृत्यसे जिसका रोम-रोम क्षुब्ध हो, उसी भूभारके समीप जानेके लिए आदेश और वह भी स्वानुभव पूछनेके लिए। लक्ष्मण उद्विग्न हो उठे।

रामसे लक्ष्मणका यह मनोभाव अव्यक्त न रह सका। वे वात्सल्य-भावसे बोले—"वत्स! रावणसे हमारा कोई द्वेष-भाव न था। केवल उसके निन्द्य कर्म ही से विरोध था। हमारे बार-बार प्रयास करने पर भी जब उसने दुराग्रह न छोडा, तभी उसका वध करना पडा। उसके पार्थिव शरीरके साथ-साथ हमारा वैर-भाव भी समाप्त होना चाहिए।"

फिर तनिक मुसकराते हुए बोले—"भाई, इस असार ससारसे तो सभीको अपनी-अपनी बारीसे जाना है, किन्तु वह अपयश लेकर जा रहा है। इसीलिए वह और भी दयाका पात्र है। वह आयुमे हमसे बहुत बडा है। उसने दुनिया देखी है, जीवन भरके शासनका उसे अनुभव है। मोतियोको खारे समुद्रमे गोता मारकर ही निकाला जाता है। रत्न यदि अपावन स्थानमे पडा हो, तो भी उसे कोई नही छोडता। फिर रावण-जैसे वयोवृद्ध, अनुभवी शासककी सीख लेनेसे हम क्यो चूके?"

मन मारकर लक्ष्मण धराशायी रावणके समीप गये, कुछ स्वानुभव बतलानेके लिए, जिज्ञासा प्रकट की, किन्तु रावणने उनकी ओर देखा तक नही। शान्त-भूमिसात् पडा रहा। लक्ष्मण क्षुब्ध मनसे लौट आये।

राम स्नेह स्वरमे बोले—"यशस्वी, मालूम होता है तुम लकेशके सिरहाने खडे होकर सीख लेना चाहते थे। सीख तो नम्र और विनयी बनकर ही प्राप्त होती है। तिस पर वह लकाधिपति, अभिमानी, शत्रु। यूँ सहजमे

ही तुम्हारे लाभार्थ स्वानुभव वह क्यो व्यक्त करता? कोई कितना ही महान् हो, लेनेके लिए तो उसे झुकना ही पडता है। इतना बडा समुद्र भी क्षुद्र नदी-नालोसे पानी लेनेके लिए उनसे नीचे ही रहता है।"

अपनी भूल समझकर अबकी बार लक्ष्मण एक विनीत विद्यार्थीकी तरह रावणके पावोकी ओर खडे होकर नम्रतापूर्वक बोले—

"लकेश! मै आपसे कुछ सीख लेने आया हूँ।" लक्ष्मणके इस व्यवहारसे कराहते और छटपटाते रावणके मुँहपर एक स्मित-रेखा खिच गई। वह रही-सही शारीरिक-शक्ति बटोरते हुए अस्फुट स्वरमे बोला—

"रामानुज, लकेश तो मेरे जीवनकालमें ही तुम्हारे भाईने बन्धु-द्रोही विभीषणको बना दिया था। अत मुझे लकेश न कहो! इस सबोधनसे तुम अपने भाईकी अभिलाषाका अपमान.. ...!"

फिर कुछ क्षण निस्तब्ध रहनेके बाद रावण सुप्तावस्था-जैसी स्थितिमें बोला—

"मै क्या और मेरी सीख क्या? सीता-अपहरणकी एक ही भूलने जन्म-जन्मान्तरोके सुकृत्यो पर पानी फेर दिया। फिर भी सीख देनेका पात्र समझते हो तो हृदय-पटलपर अकित कर लो—

१—शुभकृत्योको करनेमे पलभरका विलम्ब भी वाञ्छनीय नही।

२—क्रोधावेशमें कोई भी कार्य समुचित नही।

३—दुष्कृत करनेसे पूर्व गुणीजनोकी अनुमति लेना अनिवार्य।"

रावण कुछ क्षण फिर मौन हो गया। वह नही चाहता था कि उसकी शारीरिक वेदनाका तनिक भी आभास लक्ष्मणको मिले। अत मनोव्यथाको किसी तरह मन्थन करके बोला—

"सुमित्रा-नन्दन! मुझसे जीवनमें यही भूल हुई कि मै स्वय इनका महत्त्व न समझ सका। शुभ कार्य कल पर टालता रहा। क्रोधावेशमे भाईको खदेड दिया। सीता-हरण-जैसा दुष्कृत तुरन्त कर डाला। किसीकी

अनुमति नही ली।" कहते-कहते लकेशके शरीरमे एक सिहरन-सी हुई। उसने अपने अर्द्ध-उन्मीलित नेत्र लक्ष्मणके नेत्रोंसे मिलाते हुए कहा—"वत्स एक बात कहूँ, यदि तुम रामसे कहनेका साहस कर सको?"

लक्ष्मणके मौन रहनेपर लकेश बोला—"कह सको तो कहना—'तुम्हारी सगठन-शक्ति, बन्धु-प्रेम, नारी-सम्मान, मातृ-पितृ-भक्ति आदि गुण जहाँ ससारमें सुयश बढायेगे, वहाँ विभीषण-जैसे भ्रातृ-द्रोहीको कार्य-सिद्धिके लिए साधन बनाना और अपहृता सीताकी अग्नि-परीक्षा लेना अपयशके कारण होगे। लकामें केवल एक विभीषण था, किन्तु उनके इस उदाहरणसे आर्यावर्त्तमे असख्य विभीषण होते रहेगे। और असंख्य सीताएँ अग्नि-परीक्षा देनेको विवश होती रहेंगी, फिर भी परित्यक्ता ही रहेंगी।"

लकेश सम्भवत. कुछ और कहता, परन्तु तीन हिचकियोके साथ उसके प्राण-पखेरू उड गये।

१६ मार्च १९५५ ई०

• • •

जटायुका तर्पण

जटायु एक निम्न कोटिका पक्षी था, वृद्ध एव शिथिल। फिर भी उसका हृदय वीरत्व और शौर्यसे परिपूर्ण था। उसके नेत्र यद्यपि ज्योति-न्यून हो चले थे, फिर भी उनमें उस गैरतका अंश शेष था, जो अन्यायको देखकर खौल उठती है।

वह वृद्धावस्थाके दिन शान्ति और सन्तोषपूर्वक यापन कर रहा था कि उसके कानोमे नारी-क्रन्दन पडा तो वह सिहर उठा और यह देखकर कि एक अवला सुकुमारीको आततायी अपहरण करके लिये जा रहा है, वह तडप उठा। वह नर ही क्या जो किसी नारीका अपमान होता हुआ देखता रहे? यह दृश्य उसके लिए चुनौती था। न उसका अपहृतासे कोई राग था, न आततायीसे कोई द्वेष। उसके सामने तो केवल नरका कर्त्तव्य था। वह पक्षी धर्म-अधर्मकी सूक्ष्म व्याख्यासे अनभिज्ञ था। वह तो केवल अन्याय सहन करना अधर्म और असहायकी सहायता करना धर्म समझता था।

उस जाँवाजने तुरन्त पूरे वेगसे रावणपर आक्रमण किया। आक्रमण करनेसे पूर्व वह रावणके और अपने वलावलको जानता था कि हाथी और मच्छरकी लडाई है। अवलाको छुडाना तो दरकिनार अपना भी नाश निश्चित है। फिर भी वह रावणपर टूट पडा और रावणको क्षत-विक्षत करके वीर-गतिको प्राप्त हुआ।

अपने इस वलिदानसे भावी पीढीके लिए यह आदर्श उपस्थित कर गया कि आततायी कितना ही शक्तिशाली क्यो न हो, उसका विरोध प्राणोकी वाजी लगाकर भी करना चाहिए। जटायुके उस आदर्शका ही शायद यह परिणाम है, कि लोग शान्ति-शान्ति और क्षमा-क्षमाके कोलाहलमें भी आततायियोका विरोध करते हुए अपना रक्त वहाकर जटायुका तर्पण करते रहते हैं।

१ दिसम्बर १९४६ ई०

एक प्रश्न

रावण-जसा विजयी सम्राट् नारी-तेजके समक्ष भिक्षुक वननेको वाध्य हुआ, रौरव नरकमे गिरा और सदा-सदाको कलकित हुआ। इससे अधिक नारी-तेजकी महिमा और क्या हो सकती है? परन्तु प्रश्न तो यह है कि जिस शिव-धनुषको रावण-जैसा महावली, विश्वविजयी हिलातक नही सका, उसी शिवधनुपको वाल्यावस्थामें सहज स्वभावसे उठाकर अपने वल-पराक्रमका परिचय देकर जिस सीताने सबको चकित कर दिया, वही सीता अपहरणके समय रावणपर टूट क्यो नही पड़ी? निहत्थी थी तो दाँतो-से रावणकी नाक काटी जा सकती थी, उँगलियोसे आँखें कुचाई जा सकती थी। मुँह वकोटा जा सकता था। छीना-झपटीमे देर लगनेसे राम-लक्ष्मणके आ पहुँचनेकी सम्भावना थी। शोर-पुकार सुनकर गोड-भील भी पहुँच सकते थे?

यदि वहाँ अभाग्यवश हतप्रभ या विवश हो गई या चूक गई तो जैसे द्रोपदीने कीचकको वहकावेमें डालकर भीम-द्वारा उसका वध करवा दिया था। उसी तरह सीताने रावणको चकमा देकर सोतेमें उसका वध क्यो नही किया? अवसर देखकर उसके महलोमे, आग क्यो नही लगा दी?

यदि सीताने अपने अन्य लोकोत्तर आदर्शोके साथ-साथ आततायीको नष्ट करनकी लीक भी डाल दी होती तो जैसे उनकी पुत्रियाँ उनके पातिव्रत एव शील-सदाचारका अनुकरण करती चली आ रही है। उस लीकपर भी चलकर आततायियोको पनपने नही देती, उनका जड-मूलसे नाश ही कर दिया होता।

सिंहनीके सदृश सीता आततायीके वन्धनमें गायकी तरह क्यो विलखती तडपती रही?

जव मैं अपहरणके दुखद काण्ड सुनता हूँ तो मेरा घायल मन खन उगलने लगता है और उक्त प्रश्न मुझे झकझोर डालता है।

१ दिसम्बर १९४६ ई०

रामकी भूल

रावणका वध हो जानेपर सीता रामके शिविरमें आई। सीता सोचती थी–
"राम मुझे देखकर विह्वल हो उठेंगे, वे मुझे हृदयसे लगानेको दौड़ेंगे और मैं चटसे उनके चरणोंमें गिर जाऊँगी, उठायेंगे तो भी न उठूँगी और रोकर भीख मागूँगी कि नाथ, अब यह चरण-सेवा पलभरको भी न छूटने पावे।" किन्तु सीताकी यह आशा हवामें तैर गई। रामने सीताकी ओर देखा भी नहीं। गुप्तरूपसे हनुमान्‌से सीताके पवित्र बने रहनेकी बात पाकर भी उनका हृदय अविश्वासी हो उठा।

कहा जाता है कि वे सीताके सतीत्वकी ओरसे निश्चिन्त थे, किन्तु लोक-लाजके लिए अग्नि-परीक्षा आवश्यक थी। हम कहते हैं यही सबसे बड़ी भूल रामने की। रावणके यहाँसे असती लौटनेपर भी सीताका कोई अपराध नहीं होता। बलवान आततायियोंके आगे शारीरिक सतीत्व रह ही नहीं सकता, फिर सतीत्व तो आत्माकी वस्तु है, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। यदि पुद्‌गलको कोई दुष्ट बलात् अपवित्र करता है तो इससे सतीका क्या बिगड़ता है? सीताका सहर्ष स्वागत करके यदि राम यह परिपाटी डाल जाते कि हरण की हुई स्त्रियाँ हर दशामें पवित्र हैं और उन्होंने यदि सीताकी आलोचना करनेवाले नीच धोबीकी यह कहकर जिह्वा काट ली होती कि जो निरपराध नारीको दोष लगाता है, उसको यही दण्ड मिलता है, तो आज स्त्रियोंकी जो यह दुरवस्था हो रही है, न हुई होती।

आज तो स्थिति यह है कि हमारी जो बहन-बेटी गई, सो गई, क्योंकि यदि उसे लौटनेका अवसर मिलता भी है और वह आना भी चाहती है, तो वह सोचती है कि जहाँ मैं जा रही हूँ, वहाँ मेरे लिए स्थान कहाँ है? जूतेमें परसी रोटियाँ मिलेंगी और चारों ओर घृणा भरी आँखोंकी छाया। ऐसे अवसरोंपर पुरुष तो पुरुष, स्त्रियाँ भी अपनी उस बहनको सम्मान या

प्यार नही दे पाती। उनके व्यंग्यवाण तो उस समय इतने पैने हो जाते है कि कलेजेको वीधनेमें चूकते ही नही।

अपहृत होजानेपर भी आज नारीको जहाँ यह सीखना है कि वह हताश न हो और अपना गुरीला युद्ध जारी रक्खे, वहाँ हमे भी तो अपनी मनोवृत्तिमे परिवर्तन करना है। यह परिवर्तन ही तो उस योद्धा नारीका असली वल है। प्यार और मानकी दुनिया उजाड़कर ठोकरोंके ससारमे कौन आना चाहेगा ? जो काम रामने नही किया, वह आजके समाजको करना है, उसे जीना है तो यह करना ही होगा। अपहरणसे लौटी हुई स्त्रियोको भरपूर सम्मान मिलना चाहिए। उन्हें उनका स्थान मिलना चाहिए। उनके लिए सम्मान और स्थानकी गारण्टी करके ही हम इस भूलका प्रायश्चित्त कर सकते है।

दिसम्बर १९४६ ई०

० ० ०

बुढ़ियाकी सीख

राजा नन्दसे अपमानित होकर चाणक्य प्रतिहिसाकी भावना लिये किसी ऐसे व्यक्तिकी खोजमे भ्रमण करने लगा जो नन्द-साम्राज्यको विध्वस करनेकी सामर्थ्य रखता हो। खोजते-खोजते सुकुमार चन्द्रगुप्तपर उसकी दृप्टि जमी। चद्रगप्त यद्यपि मोर्य-राज्यवशमे उत्पन्न हुआ था, किन्तु उसके बाप-दादाओसे राज्य छिन जानेके कारण उसकी माता गर्भावस्थामें अपने मायकेमे दिन काट रही थी। ननिहालमे ही चन्द्रगुप्तका जन्म हुआ।

चन्द्रगुप्त वचपनसे ही मेधावी और शूर-वीर था, उसकी वाल्य-सुलभ क्रीडाओमे उसके भविप्यका आभास मिलता था। ऐसी ही क्रीड़ाओसे प्रभावित होकर सुकुमार चन्द्र ुप्त मौर्यको चाणक्य अपने साथ ले गया, और उसे वहुत शीघ्र युद्धविद्यामे निपुण कर दिया। जव चन्द्रगुप्त सैन्य-सचालन-योग्य हो गया तो चाणक्यने रसायन-सिद्धि-द्वारा जो द्रव्य प्राप्त किया था, उस धनसे कुछ सेना एकत्र की और उसे लेकर दोनो विजय-यात्राको निकले। साहस तो महान् था, किन्तु मुट्ठीभर अशिक्षित सैनिक सवल राप्ट्रोके समक्ष क्या खाकर ठहरते? लाचार युद्ध-क्षेत्रका परित्याग करना पडा। शत्रुओके गुप्तचरोंसे वचते हुए छद्मवेशमे उपयुक्त अवसर और आवश्यकीय सहायताकी खोजमे चाणक्य और चन्द्रगुप्त मौर्य गाँव-गॉवमे घूम रहे थे कि एक रात्रिको किसी गॉवमे एक वुढियाके यहाँ आश्रय लिया।

वुढिया उस समय गरमागरम खिचडी अपने वच्चोंको दे रही थी। वच्चोमे-से एकने उतावलीमे गरमागरम खिचडीके वीचमे हाथ डाला तो हाथ झुलस जानेसे वह चीख उठा। वच्चेकी यह हरकत देखकर वुढिया वोली—"अरे मूर्ख, तू भी चाणक्य-चन्द्रगुप्तके समान अवोध ही रहा।"

बुढियाके मुँहसे यह वाक्य सुनकर इन्होने पूछा—"माई ! यह चाणक्य-चन्द्रगुप्त कौन है ? और इस लडकेका हाथ झुलस जानेसे उनकी मूर्खताके साम्यका क्या प्रयोजन है ?"

बुढियाने सहज भावमे कहा—चन्द्रगुप्त और चाणक्य देश-विजयकी महत्त्वाकाक्षा रखते है। उन्होने सीमाओके राज्योको विजय किये बगैर मध्यराज्यपर आक्रमण कर दिया। परिणामस्वरूप वे चारो तरफसे घिर गये और युद्ध-परित्याग करके भागना पडा। यदि वे सीमाओके राज्योको एक-एक करके वशीभूत करते तो यही सीमान्त-राज्य उनका विरोध करनेके बजाय विजय-अभियानमे सहायक होते। वही मूर्खता इस बालकने भी की। यदि इसने किनारेसे खिचडी खानेका प्रयास किया होता तो हाथ क्यो झुलसता ?"

बुढियाका मार्मिक सकेत पाकर दोनोको अपनी भूलका आभास हुआ। वे मन-ही-मन उसको प्रणाम करके वहाँसे रवाना हुए और बहुत शीघ्र एक विशाल सैन्य सगठित करके सीमान्त देशो और मार्गके राज्योको विजय करते हुए, उनके शासकोको अपनी ओर मिलाते हुए, उत्तरोत्तर पाटलिपुत्र तक बढते गये और तत्कालीन भारत-सम्राट् नन्दपर आक्रमण करके उसे विजय कर लिया और ३२२ ई० पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य स्वय भारतका सम्राट् बन गया।

अक्टूबर १९३२ ई०

● ○ ○

न्यायकी स्मृति

गुजरात-नरेश चौलुक्य जयसिहके शासन-कालमे खम्बातके कुछ पारसियो और हिन्दुओने वहाँकी मसजिद शहीद कर दी। मसजिदके इमामने स्थानीय राज्य-अधिकारियोसे फरियाद की, किन्तु सम्प्रदायके मोहवश उनके कानपर जूँ तक नही रेगी। निराश होकर महाराजा जयसिहके दरबार में प्रार्थी हुआ।

महाराजा बगैर किसीको सूचना दिये खम्बात गये। वहाँ गुप्त वेशमे तीन रोज तक इधर-उधर घूमकर वास्तविक स्थितिका पता लगाते रहे और जब यह निश्चय हो गया कि मसजिद शहीद करनेमे अमुक वर्गका हाथ है, तब उन वर्गोके दो-दो सरगने बुलाकर दण्डित किये। राज-कोपसे मसजिदका पुन निर्माण कराया, इमामको खिलअत प्रदान की। और राज्य भरमे घोषणा की—"हमारे राज्यमे सभी वर्गोको स्वतन्त्रतापूर्वक अपने-अपने धर्म-पालनका अधिकार है। कोई भी सम्प्रदाय एक-दूसरेके धार्मिक भावोको चोट नही पहुँचा सकता। अपराधी किसी भी सम्प्रदायका हो, बगैर किसी भेद-भावके उसे दण्ड दिया जायगा।"

सुनते हैं उस खिलअतको मसजिदके उत्तराधिकारियोने उस न्यायकी स्मृतिस्वरूप जनताको दिखानेके लिए बहुत यत्नपूर्वक सँभालकर रख छोडा है।[1]

१६ मार्च १९५५ ई०

---

१ मुंशी देवीप्रसाद मुन्सिफ-द्वारा संकलित 'इन्साफ-सग्रह' के आधार पर।

सवाई जयसिंहका यह आदर्श

एकबार जयपुर-नरेश सवाई जयसिह प्रात कालीन सूर्यकी आभा देखनेके लिए अपने महलकी छतपर चढे तो इस प्रकार हतप्रभ हो गये, मानो काले साँप पर पैर पड गया हो। तुरन्त उल्टे पाँव और कानोको हाथ लगाते हुए छतसे उतर आये और राज्य-पण्डितको बुलाकर दरियाफ्त किया—

"यदि कोई पिता अपनी युवती पुत्रीको अकस्मात् नग्न देख ले तो, उसके प्रायश्चित्तके लिए धर्मशास्त्रोमे क्या विधान है?"

"महाराज! इस तरहका विधान तो मेरी दृष्टिसे नही गुजरा है। मेरी तुच्छ सम्मतिमे उसे धनधान्यादि देकर सन्तुष्ट करना चाहिए।"

राज्य-पण्डितकी सम्मति पाकर महाराजने अपने निजी कोशसे पाँच हजार रुपये निकालकर मत्रीको देते हुए फरमाया—

"हमारे महलकी अमुक ओर जो अमुक मकान है। उसमे रहनेवाली महिलाको यह निधि देते हुए कहना—महाराजाने अपने महलकी छतपर चढते हुए अनजानेसे तुम्हे निर्वस्त्र देख लिया हे। इस असावधानीके कारण उन्हे वहुत आत्मग्लानि हो रही है। प्रायश्चित्त स्वरूप तुम्हे ५००० रु० भेजे है और कहते है कि हमारी इस पुत्रीको विश्वास रहे कि भविष्यमे विना पूर्व सूचनाके हम छतपर कभी नही जायेगे।"

मत्री कुछ कहना ही चाहता था कि महाराजने यह कहते हुए उसे निरुत्तर कर दिया—

"मन्त्रिवर, प्रजा हमारी सतान है, यदि हम ही अपने ऊँचे-ऊँचे महलोपर चढकर वहू-वेटियोको देखेगे तो वे न्याय कहाँ पायेगी, और लुच्चे-लफगोको हम किस मुँहसे दण्ड दे सकेगे?"[1]

१४ मार्च १९५५ ई०

---

१ मुशी देवीप्रसाद मुन्सिफ-द्वारा संकलित 'इंसाफ-सग्रह' के आधार पर।

जान बेची है, ईमान नहीं बेचा है,

जहाँगीरके शासन-कालमे उसकी चहेती बेगम नूरजहाँका भाई लाहौर-का सूबेदार (राज्यपाल) था। उस सूबेदारका एक मुँह लगा नौकर एक खत्री-युवतीको कुदृष्टिसे देखता था। अनेक डोरे डालने और तरह-तरह-के हथकण्डोके बावजूद भी युवती उसके झाँसोमे नही आई तो, चिढकर उसको तरह-तरहसे बदनाम करने लगा। ताकि बदनामीके भयसे वह वशीभूत हो सके।

सूबेदारसे न्यायकी आशा रखना बालूके रेतसे तेल निकालने-जैसा था। आखिर तग आकर युवतीके अविभावकोने जहाँगीरके हुजूरमे फरियाद की।

जहाँगीरने नौकरसे वास्तविक स्थिति जाननी चाही तो वह कामान्ध निर्लज्जता पूर्वक बोला--

"खुदावन्दा! यह खत्री लडकी मुझसे कई बार मिल चुकी है। और मुझसे निकाह करनेको रजामन्द थी। सुबूतके तौरपर इसको जाएशर्मके पोशीदा निशान बता सकता हूँ। किबल-ओ-कावा इसके क़ाफ़िर घरवालोने इसे वहका दिया है।"

नौकरका गुस्ताख़ाना कलाम सुना तो जहाँगीर चिराग-पा हो गया। फिर भी उसने शान्त स्वरमे पूछा--

"क्या तुम अपनी बीवीके भी कुछ पोशीदा निशानात जानते हो?"

"नही जहाँपनाह।"

"सिर्फ दो-चार बार मिलनेपर जब खत्री लडकीके बारेमे इतना जानते हो, तब बरसोसे दिन-रात साथ रहनेवाली औरतके बारेमे क्यो नही जानते?"

" . "

"हमे सब हकीकत मालूम है, तुमने इसकी नाइनको फुसलाकर पोशीदा राज मालूम कर लिया है, और जब यह नेक लडकी तुम्हारे हथकण्डोपर नही

चढी तो तुमने इसे बदनाम करना शुरू कर दिया। ताकि बदनामी सुनकर इसके बिरादरीवाले इसे घरसे निकालनेको मजबूर कर दे। तुमने एक बा-अस्मत, बेदाग अछूती लडकीको फुसलानेके लिए जो कमीना-ओ जलील हरकते की है, उनको देखते हुए तुम्हे मौतकी सज़ा भी काफी नही है।"

नौकरको प्राणदण्ड देनेके अतिरिक्त लाहौरके सूबेदारको और कुटनी नाइनको भी उचित सजा दी गई।

नूरजहाँ नही चाहती थी कि उसके भाई सूबेदारको और उसके मुलाजिमको सजा दी जाय। मुकदमा पेश होने वाली रातको नूरजहॉने पहिले तो जहॉगीरको खूब शराब पिलाई, ताकि बेखुदीके आलममे माफीनामेपर मुहर लग जाए। फिर उसके तरकशमे जितने कामबाण थे, वे सभी छोड़े गये। तब भी सफलता प्राप्त नही हुई तो नूरजहॉ आँखोमे ऑसू भरकर मुहब्बतका वास्ता देते हुए बोली—"कहॉ तो आप फरमाया करते है कि 'नूर'के जरा-से इशारेपर जान-कुर्बान कर सकता हूँ और कहॉ मेरे इतने इसरारपर भी इस अदना-सी बेहकीकत मुकदमेका फैसला मेरी ख्वाहिशके मुताबिक नही हो सकता।"

"मलिका! हमने तुम्हारे हाथ जान बेची है, ईमान नही बेचा है।" ची-ब-जबी होकर जहाँगीरने जवाब दिया और उठकर दूसरे महलमे चला गया[1]।

१५ मार्च १९५५ ई०

[1] मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ-द्वारा संगृहीत इंसाफ सग्रहके आधारपर।

विश्वासकी विजय

जनवरी १८०५ ई०मे जब अग्रेजोकी तरफसे जनरल लेकने भरतपुरको घेर लिया, तब भरतपुर-नरेश रणजीतसिह दोहर ओढे हाथमे लट्ठ लिये दुर्गकी प्राचीरपर गोलन्दाजो और बन्दूकचियोका निरीक्षण करते हुए उन्हे प्रोत्साहन एव बढावा देते घूम रहे थे कि सैनिकोने आग्रह किया—

"अन्नदाता! आप यहाँ न रहे, शत्रुओकी तोपे ओलोकी तरह गोले बरसा रही है।"

महाराजने मुसकराते हुए अपनी वृजभाषामे जवाब दिया—"भैया, जाके नामकी चिट्ठी भगवान्के घरते वामे बँधी आवे है, वाईके गोला लगे है।"

और सचमुच महाराजकी बात सच निकली। वे निर्भय-निशक प्राचीरपर घूम-घूमकर युद्ध सचालन करते रहे। उनकी आँखोके सामने पक्ष-विपक्ष-के सैनिक धराशायी होते रहे। उनके चारो तरफ गोले आग उगलते रहे, परन्तु उनका बाल भी बाँका न हुआ।

६ दिसम्बर १९४६ ई०

• • •

ये शिक्षक और विद्यार्थी

"**क्यों** मास्टर साहब! ख़ैर तो है? बहुत ही चिन्तित और खोये-खोये-से नजर आ रहे हैं।"

"हाँ भई ख़ैर ही है, जो दम गुजर जाय गनीमत है।"

"हुजूरके दुश्मनोको आखिर हुआ क्या है, जरा मैं भी तो सुनूँ!"

"अरे साहब! आप क्या करेंगे सुनकर। ईमानकी बात यह है कि अब जिन्दगीका लुत्फ नही। इस बेहया जिन्दगीसे तो मरना हजार दर्जे बहतर, मगर—

मुझे क्या बुरा था मरना गर एक बार होता।

"अच्छा साहब! आप दास्ताने-गम सुनना ही चाहते है, तो पहले एक लतीफा सुनिए।"

"इर्शाद"।

"एकबार बादशाहसे बीरबरकी किसी बातपर खटक गई तो उसने दरबारमे जाना छोड दिया, और—'कुछ-न-कुछ किया कर, बेकार रहनेकी बजाय सुथने फाड सियाकर'—कहावतके अनुसार उसने भी एक सेठके यहाँ नौकरी कर ली। बारह रुपये मासिकमें दो बच्चोको पढ़ानेके अलावा, उनकी देखभाल और शामको सैरमें साथ रहना भी शामिल था। बीरबरने यह सब बगैर किसी चूँ-चराके मजूर कर लिया। ताकि बादशाह यह उलाहना न दे सके कि हमारे यहाँके अलावा कोई कौडीके भावमे भी नही पूछता।

एक रोज सेठजी भी सैरमें साथ थे। लैण्डोमे मुश्की घोडे जुते हुए दुलकी चल रहे थे। कोचवान वर्दीमें जर्क-बर्क मालूम होता था। गाडीके पीछे खडा हुआ साईस भी ऐन-फैन था। बीरबर अपने गरेबानमे मुँह लटकाये बैठा था कि यकायक उसे न जाने क्या सूझा, कोचवानसे पूछ बैठा—

"क्यो भई कोचवान! सेठजी तुम्हें क्या तनख्वाह देते है।"

"हुजूर! यह भी कोई छिपी हुई बात है। २५ रु० तनख्वाहके अलावा कपडा-मकान, इनाम-इकराम .....।"

कोचवानकी बात पूरी न हो पाई थी कि वीरबर सेठसे यह कहते हुए—"आप अपने बच्चोको पढवानेके बजाय कोचवानी सिखाइये। कम-से-कम आपके बाद इस हुनरसे ये लोग पेट तो भर लेंगे। जब मुझे ही १२ रु० मिलता है, इन्हे तो कोई कौडीके तीन-तीन भी नही पूछेगा"—गाडीसे कूद पडे।

"मास्टरजी! आपने लतीफा क्या सुनाया, हम लोगोके मुँहपर जूता मार दिया है।" शिक्षकोसे कुली-कबाडी, धुने-जुलाहे, तेली-तबोली आज लाख दर्जे बेहतर है। अध्यापकोकी दयनीय स्थितिका यह सजीव चित्रण है।"

"आर्थिक स्थिति ही दयनीय रहती तो भी गनीमत थी। वह अपनी मान-प्रतिष्ठाके अहकारको लिए जैसे-तैसे जिये जाता है, परन्तु अब तो इज्जत-आबरू सभी खतरेमे है।"

"बेशक, आप दुरुस्त फरमा रहे हैं। पहले विद्यार्थी अध्यापकोसे थर-थर काँपते थे और उनके हर आदेशका पालन करना अपना अहोभाग्य समझते थे। और अब शिक्षकवर्ग अपने शिष्योसे उसी तरह भयभीत है जैसे भेडिये और लकडबग्घोसे लखनवी।"

"सुना नही आपने? अलीगढमें इन लडकोने अपने प्रिंसिपलको मार डाला। अन्य मार-पीटके किस्से तो मामूली बात है! ट्रेनमे मारपीट करते है, सडकोपर उत्पात मचाते है, चलती लडकियोको छेडते है, भले आदमियोपर फब्तियाँ कसते है। अध्यापक सब कुछ देखते है, और हाथ मलकर रह जाते है।"

"करें भी क्या? उन्हे अपनी पगडी सँभालनी दुश्वार हो रही है।

पहले विद्यार्थी सजाके खौफ से कॉपते रहते थे। और जबसे ताड़नकी प्रथा बन्द हुई है, शिक्षकोको हर वक्त पिटनेका भय बना रहता है।"

"आपने नौशेरवॉ बादशाहका किस्सा तो सुना होगा!"

"वह कौन-सा?"

"यही कि जब नौशेरवॉ युवराज था और बादशाहोचित शिक्षा-दीक्षा प्राप्त कर चुका तो बादशाहने इनाम-इकराम देनेके लिए प्रधान शिक्षकको बुलाया और फरमाया—

"वलीअहदको जिन-जिन उस्तादोने जो-जो हुनर सिखलाया है, उन सबकी फिहरिस्त पेश की जाय, ताकि मा-बदौलत उनको इनाम-इकराम देकर अपनी दरियादिलीका इजहार कर सके!"

"हुजूरकी दरियादिलीको कौन नही जानता, सूरज और चॉद अपनी ऑखोसे रोजाना इस फैजेआमको देखते है। जहॉपनाह, सिर्फ आजभरकी तालीम बाकी रह गई है, वह भी दे दी जाय तो . ।"

"बहुत मुनासिब, हम बहुत बेसब्रीके साथ तुम्हारी फिहरिस्तका इन्तजार शामतक करेगे।"

प्रधान शिक्षक, नौशेरवॉको लेकर अस्तबल गया। वहॉसे एक घोडा लिया, उसपर स्वय बैठा और लगाम पकडकर चलते रहनेके लिए नौशेरवॉको हुक्म दिया। नौशेरवॉ ब-सरो-चश्म लगाम पकडकर घोडेके साथ दौडने लगा। घोडेकी रफ्तार बढती ही गई और नौशेरवॉ दौडते-दौडते बेहोश होकर गिर गया। घोडेपर लादकर शिक्षक उसे महलोमे लाया तो कोहराम मच गया। बादशाहके क्रोधका पारावार नही रहा। फिर भी उसने जब्तसे काम लिया। शिक्षकको बुलाकर फरमाया—

"काम तो तुमने आज वह किया है कि जो भी सजा दी जाय कम है, मगर वलीअहदके उस्ताद होनेकी वजहसे तुम्हे माफ फरमाया जाता है।"

"जहॉपनाह! बेशक मैने बहुत बडी गलती की है, और मै हर सजाका मुस्तहक हूँ! फिर भी आपने मुझे माफ फरमाया, इस दरियादिलीका

किस मुँहसे शुक्रिया अदा करूँ। मेरी इस हरकतको वलीअहद तो शायद ता-जिन्दगी न भूलेंगे, इजाजत दीजिये कि मैं अपना यह स्याह मुँह किसी और मुल्कमे ले जाऊँ।"

शिक्षकके चले जानेपर नौशेरवाँको होश आया तो उसने सबसे पहले अपने उस्तादकी कुशल-क्षेम पूछी और जब वास्तविक स्थिति बताई गई तो उसे बहुत सदमा पहुँचा, उसने बादशाहसे अर्ज किया—

"वे सजाके नहीं, इनामके मुस्तहक है। उन्होंने आज जो सबक सिखाया है, वह ता-ज़िन्दगी मेरे काम आयेगा। मै उनके इस अहसानका बदला कयामत तक नही चुका सकूँगा।"

बादशाहने हैरतसे पूछा तो कहा—"उस्तादने मुझको आज यह सबक दिया कि कभी किसीको तकलीफ न देना। तकलीफ देनेसे पहले सोच लेना कि अगर मै इसकी जगह होता तो क्या होता! हर इन्सानमे तुम्हारे जैसी ही जान है, और हर इन्सान उसी तरहसे दुःख-सुख महसूस करता है, जैसा कि तुम।"

और सचमुच नौशेरवाँने ता-जिन्दगी न अपने घोडेके साथ साईसको चलने दिया न किसी निरपराधीको सजा दी।"

"मास्टरजी, शिष्योकी गुरुभक्तिके तो अनेक उदाहरण पुराणो एव इतिहासोमे भरे पडे है। प्रश्न तो यह है कि आज विद्यार्थीवर्ग इतना उद्दण्ड और अनुशासनहीन क्यो हो गया है?"

"भाई जान, बात यह है कि पहले शिक्षक ज्ञानका दान करते थे, अब उसे बेचते है। अतः चालाक दुकानदार और सयाने ग्राहकमे जो तू-तू मैं-मैं चलती है वही शिक्षको और विद्यार्थियोमे होती रहती है—"

जैसी गन्दी देवी वैसे ऊत पुजारी।

जो आज विद्यार्थी है, वही कल शिक्षक बनेंगे। यदि ये अपने जीवनमें शोहदे और उद्दण्ड रहेंगे तो इनके विद्यार्थी धर्मराज युधिष्ठिर और नौशेरवाँ कैसे बनेंगे?

विद्वान्‌का सम्मान

दिल्ली-दरबारकी घटना है। शम्स-उल-उलमा मौलाना अब्दुलहक खैराबादी एक रोज महाराजा काश्मीरके यहाँ तशरीफ ले गये। खेमेमें बिछी हुई मसनद पर महाराजाने आपको आदरपूर्वक बिठाया और कुशलक्षेम पूछनेके बाद युवराजके उस्तादको भी बुलवाकर आपके समीप बिठाते हुए फरमाया—

"चिरकालसे अभिलाषा थी कि किसी उपयुक्त विषयपर दो आलिमोका शास्त्रार्थ सुनूं। आज वह अवसर अनायास प्राप्त हुआ है। हाँ साहब, तो फिर दोनो ।"

शम्स-उल-उलमाको बर्दाश्त कहाँ? चिराग-पा हो गये। खेमेसे बाहर निकलते-निकलते बोले—

"महाराजा साहब! आप आलिमोको लडानेके बजाय, बेहतर होगा कि मुर्गो और बटेरोको लडाया करे। यह आलिमोकी शान नही, कि वह किसीकी तफरीहके लिए बेवजह चाहे जिस मौजूपर बहस करने लगे।"

शम्स-उल-उलमाको इस तरह जाते हुए देखा तो महाराजाको पसीना आगया। उन्होने पास खडे हुए अफसरको तत्काल आपके पीछे-पीछे भेजा कि वह किसी तरह आपको मनाकर वापिस ले आये, परन्तु आप नही रुके और गाडीमें सवार होकर चले गये।

दूसरे रोज महाराजाने अपने उच्च अधिकारीको ११ पारचे खिलअत और दो हजार रुपये नकद देकर आपके पास भेजा, तो आपने नम्रता पूर्वक अस्वीकार करते हुए फरमाया—

"आप मेरी तरफसे महाराजासे मआजरत (क्षमा-याचना) और इजहारे-अफसोस इस वक्ती इत्तफाक (आकस्मिक घटना) पर कीजियेगा। महाराजाने बराये-कद्रदानी खिलअत-ओ-नक्दसे मेरी इज्जत अफजाई की,

मगर मुझे अफसोस है कि मै, उसे कुबूल करनेमे माजर हूँ। क्योकि मै नवाव रामपुरका मुलाजिम हूँ। इसके लिए रईसकी इजाजत-ओ-मजूरी-की जरूरत है ।

लाचार खिलअत और नक्द लेकर उच्च अधिकारीको वापिस आना पडा। नवाव रामपुर रुग्ण होनेके कारण नही आ सके थे और दिल्ली दरबारमे शिरकत फरमानेके लिए वलीअहदको भेज दिया था। अत इस घटनाकी खबर जब वली-अहदको लगी तो उन्होने इस घटनाकी सूचना तार-द्वारा नवाबको रामपुर दी। तारका जबाव तारसे मिला—

"हमारी तरफसे ११ पारचेका खिलअत और २ हजार-नक्द शम्स-उल-उलमाको दिये जाये।"

शम्स-उल-उलमा किसी कारणसे अब रामपुर रहना नही चाहते थे, परन्तु नवाबकी इस सहृदयता और आदरकी भावनासे आप इतने कृतज्ञ और प्रभावित हुए कि जीवन पर्यन्त रामपुर ही रहे[1]।

१४ जुलाई १९५४ ई०

• • •

१ मय-खानये-रियाज़ पृ० ११९–२१।

शायरीकी उपेक्षा

एक रोज नवाब साहबके आदेशपर 'मीर' साहब उनके यहाँ पहुँचे तो देखा कि नवाब हौजके किनारे खडे है। हाथमें छडी है। पानीमे लाल-हरी मछलियोके तैरनेका तमाशा देख रहे है। इनको देखकर बहुत खुश हुए और कोई गजल सुनानेकी फरमाइश की।

'मीर' साहबने गजल सुनाना शुरू किया। नवाब साहब छडीसे मछलियोके साथ खेलनेमें भी लीन थे और पढनेकी फरमाइश भी करते जाते थे। आखिर चार शेर पढकर 'मीर' साहब ठहर गये और बोले—"सुनाऊँ क्या खाक? आप तो मछलियोसे खेल रहे है, इधर तवज्जह फरमाये तो सुनाऊँ?"

नवाबने कहा—"जो अच्छा शेर होगा, खुद ही ध्यान खीचेगा।"

'मीर' साहबको नवाबका यह रवैय्या पसन्द न आया और गजलको जेबमें रखकर घर चले आये और फिर कभी नवाब आसफुद्दौलाके जीते-जी उनके यहाँ नही गये।

• • •

शुद्ध भाषाकी सावधानी

खुदा-ए-सुख़न मुहम्मद तकी 'मीर' दिल्ली उजडनेके बाद जब आजीविकाकी खोजमे लखनऊ प्रस्थान करने लगे तो उनके पास समूची बैलगाडीके लिए किराया भी न था। अत एक और यात्रीको साझी किया। मार्गमे यात्रीने बात-चीत करनी शुरू की तो 'मीर' साहब मुँह फेरकर बैठ गये। थोडी देर बाद उसने बातचीतका सिलसिला फिर प्रारम्भ किया तो 'मीर' साहब तेवर बदलकर बोले—

"बेशक आपने किराया दिया है। आप गाडीमे शौकसे बैठे चले, मगर बातोसे क्या तआल्लुक ?"

यात्रीने कहा—"हजरत क्या मुजायका है? रास्तेमे बातोसे जी बहलता है।"

'मीर' साहब बिगडकर बोले—"जी, आपका तो जी बहलेगा, मगर मेरी जबान (भाषा) खराब हो जायगी[1]।"

• • •

१—शेरो-शायरी पृ० १५७।

ये ईद

मिर्ज़ा रुसवा उर्दूके पहले उपन्यास-लेखक हुए हैं। आपसे पूर्व उर्दूमें भूतो, जिनों, परियो आदिकी कहानियोका चलन था। प० रतननाथ दर 'सरशार'का 'फसानये आजाद' छप चुका था। मगर वह क्रमबद्ध न होकर सैकडो घटनाओका संकलन-सरीखा था। इसलिए आपका लिखा 'उमराव जान अदा' ही उर्दूका पहला उपन्यास समझा जाता है।

मिर्ज़ा रुसवाको मुफलिसीके ऐसे दिन भी देखने पडे, जब कि आपके यहाँ कई-कई रोजतक घरमे चूल्हा नही जला और मियाँ-बीवी बगैर खाये ही चुप-चाप सो गये। क्या मजाल कि पडोसियोको भी कभी एकबार इसकी खबर लगी हो।

एक बार तीन रोजके फाकेके बाद कुछ पैसा हाथ आया तो आपकी बेगमने सोचा—'चलो आज मीठे चावल ही पका ले। तीन रोज़के रोजेको तनिक ठाठके साथ खोला जाय।' मीठे चावल पक चुके तो उन्हे ख़याल आया कि मिर्जा रुसवाके फलाँ शागिर्दको मीठे चावलोका बहुत शौक है। उसे भी बुला लिया जाय।

मिर्जा रुसवा भूखसे बेताब मीठे चावलोकी ख़ुशबूका मज़ा लूट रहे थे और भूखसे अधीर बेगमसे बार-बार पूछ रहे थे कि चावल पकनेमें कितनी देर है कि बेगम बोली—"देखना तुम्हारा फलाँ शागिर्द मीठे चावल बड़े शौकसे खाता है। जरी लपककर उसे लिवा लाओ तो कैसा रहे!"

मिर्जा रुसवा बेगमकी बातसे खिल उठे और रातको उसके घरसे लिवा लाये और साथ बैठकर इस तरह चावल खाये, जैसे रोजोके बाद ईद पर दोस्त-अहबाबके साथ बै कर खाये-खिलाये जाते है।

१८ मार्च १९५५ ई०

ये भोले जीव

सहृदयता

सन् १८५७ से पहिलेकी बात है, नवाब आरिफ दिल्लीके प्रतिष्ठित व्यक्तियो-मे-से थे। रईस होनेके साथ-साथ उर्दू-साहित्य-प्रेमी थे। शायरीका भी शौक रखते थे। बेचारे अर्सेसे बीमार चले आ रहे थे। जीवनकी कोई आशा नही रही थी। दिन-दिन घुलते जा रहे थे। मृत्युसे पूर्व एक बृहत् मुशायरा करानेकी उनकी इच्छा बलवती हो उठी।

लेकिन उन दिनो मुशायरेका आयोजन करना ओखलीमे सर देनेसे भी दुष्कर था। रुपया और श्रम पानीकी तरह बहाने पर भी परेशानी और जिल्लत ही पल्ले पडती थी। उस्तादोकी अखाडेबाजी, शायरोकी आपसी चश्मक, एक-दूसरेपर हाशिया-आराई इस कदर बढ गई थी कि भले आदमी मुशायरोके नामसे कान पकडते थे। ख्यातिप्राप्त शायरोने मुशायरोमें जानेकी कसम खा ली थी। फिर भी आपने एक अभूतपूर्व मुशायरेकी योजना बना ली।

नवाब साहब अपनी रुग्णताके कारण कही आने-जाने योग्य नही थे। जहाँ जिसकी पहुँच हो सकती थी, अपने ऐसे सहयोगियोको भेजकर प्राय सभी प्रतिष्ठित शायरोसे सम्मिलित होनेकी स्वीकृति ले ली।

बादशाह जफरने गजल भेजनेका वायदा किया। गालिब, जौक, मोमिन, शैफ्ता, आजुर्दा—जैसे उस्तादोने भी बशौक शिरकत फरमानेकी मंजूरी दे दी। नवाब आरिफके पास पहुँचकर अपनी सफलताका वर्णन करते हुए एक सहयोगी बोले—"नवाबसाहब! आप हकीम 'मोमिन' का नाम भूल ही गये थे। मगर मै कब चूकने वाला था। उस्ताद 'जौक' की रजामन्दी लेकर मै सीधे वहाँ पहुँचा। मुशायरेका नाम सुनते ही ची-ब-जबी होकर फरमाया—"माफ कीजिये साहब, मै तो मुशायरोमे जाना तर्क कर चुका हूँ।"

मै भी यूँ पीछा कब छोडनेवाला था, मैने भी कारी तीर फेंका—

"हुजूर, नवाब आरिफ जिन्दगी-मौतके झूलेमे झूल रहे है। उनकी ख्वाहिश हे कि चलते-चलाते अपनी आँखोसे एक मुशायरा और देख ले।"

जैसी कि उम्मीद थी मेरा तीर निशानेपर लगा। सुनते ही तडप उठे, फरमाया-"कैसा खुशरू जवान था। बीमारीने निचोडकर रख दिया। खुदा उनको शिफा दे। फिर मेरी पीठपर हाथ रखकर बोले—"भई कोई और आये या न आये, मै जरूर आऊँगा।"

सुनकर नवाब साहबकी आँखे डबडबा आई। सहयोगी घबराया कि शायद कोई गलती हो गई। सबब पूछा तो नवाब साहब बोले—

"आपको मालूम नही अर्सेसे मेरे उनके दरमियान अनबन चली आती थी। मेरी खातिर वे भी आनेके लिए राजी हो गये।"

"नवाब साहब, यह आप क्या फ़रमा रहे है? वे तो आपका हाल सुनकर इस तरह तडप उठे, जैसे कोई अपने भाईकी खबर पर तडपता है।"

"भाई यही तो इन शरीफोकी खूबी है। यह लोग इतने नेक और रहम-दिल है कि दुश्मनका भी भला चाहते है।"

२० मार्च १९५५ ई०

• • •

---

१. दिल्लीकी आखिरी शमअके आधारपर।

सभ्यताकी कसौटी

दिल्लीके प्रसिद्ध उर्दू-हितैपी डाक्टर सर रासमसऊदका एक जर्मन-साहित्यिक मित्र भारत-भ्रमणको आया तो दिल्लीमे उनका महमान हुआ। साहित्यिक प्रसग छिडने पर उसने पूछा—

"आपकी जवानका सबसे वडा शायर कौन है?"

"गालिव"

"मै उसका दीवान खरीदना चाहता हूँ।"

उसकी अभिलापानुसार तत्कालीन मुद्रित दीवानोमे-से एक अच्छा-सा दीवान चुनकर खरीद दिया गया। जिसका मूल्य साधारण था।

भारतसे जर्मन प्रस्थान करते समय सर रासमसऊदने पूछा—"हिन्दुस्तानियोकी तहजीवो-तमद्दुन (सभ्यता एव सस्कृति) के वारेमे आपकी राय क्या है?"

जर्मन विद्वान्‌ने तुरन्त उत्तर दिया—

"मेरे नजदीक हिन्दोस्तानियोकी जिन्दगी जानवरोकी जिन्दगीसे कुछ ही वहतर हो तो हो।" कारण पूछने पर वोला—

"किसी देशकी सभ्यताका अनुमान वहाँकी साहित्यिक रुचि देखकर लगाया जाता है। क्या यह खेद और आश्चर्यकी वात नही है कि आपकी भापाका सर्वश्रेष्ठ शायर ऐसी दयनीय स्थितिमे हो कि उसका दीवान इतने घटिया कागजपर इस भद्दे ढगसे छपा हुआ, इतने सस्ते मूल्यपर वेचा जाय।"

जर्मन-साहित्यिकके उक्त वाक्य कुछ उर्दू-हितैपियोको एसे चुभ कि उन्होने उर्दू-मुद्रणका कायाकल्प कर दिया। गालिवके एक-एक शेर पर कलापूर्ण तिरगे चित्र वनाये गये। दीवाने-गालिव इतनी सुरुचिपूर्ण ढंगसे मुद्रण हुआ कि वह सौ-सौ रुपयेमे हाथो-हाथ विक गया। इसके अतिरिक्त

उर्दू-प्रकाशन-संस्थाओंने इतनी उन्नति की कि लीथोकी छपाई और हाथकी लिखाईकी कठिनाइयोंके बावजूद भी रंगीन मुद्रण, स्वच्छ अक्षर, कलापूर्ण गेटप, आदिमें एक होड़-सी लगी हुई है।[1]

१६ मार्च १९५५ ई०

• • •

---

१. 'दीवाने-मोमिन' के आधार पर।

आँखोंका लिहाज

महमूद गजनवी बादशाहका भानजा एक गरीब आदमीकी स्त्रीसे बलात् मिलता था। विरोध करनेपर पति-पत्नीको पीटता और सताता था, तग आकर गरीबने महमूदको अपनी दास्ताने-गम सुनाई। महमूदने दुःख-गाथा धैर्यपूर्वक सुननेके बाद गरीबको सान्त्वना देते हुए कहा कि—
"तू घबरा नही, मै उस जालिमको खुद अपने हाथसे सजा दूँगा। मगर मै चाहता हूँ कि तू उसे रँगे हाथ मुझे दिखा दे।"

गरीब आश्वस्त होकर चला गया और तीसरे रोज रातको आकर प्रत्यक्ष देख लेनेके लिए निवेदन किया। बादशाहने मौके पर जाकर चश्मदीद हरकत देखी तो तत्काल चिराग बुझा दिया और बलात्कारीको ललकारा।

ललकार सुनते ही वह चारपाईसे कूदकर बादशाहसे अँधेरेमे गुथ गया। आखिर थोडी गुत्थम-गुत्थाके बाद बादशाहने उसे दे मारा और गला घोटकर उसे मार डाला।

अत्याचारीका वध करनेके बाद बादशाहने पीनेका पानी तलब किया। पानी पिलानेके बाद गरीबने दस्तबस्ता अर्ज की—

"जहाँपनाह! मुजरिमको कत्ल करनेसे पेश्तर चिराग बुझाना और बादमे पानी पीना, किस मसलहतसे हुए, खाकसारकी समझसे बाहर है।"

महमूदने बताया—भानजेको देखकर आँखोका लिहाज इन्साफके आडे न आ जाये, इस खयालसे चिराग गुल किया और तुम्हारी फरियाद सुनकर मैंने खुदाके हुजूरमे वादा किया था कि जालिमको सजा देनेके बाद ही खाना खाऊँगा। तुम तीन रोजके बाद आये। लडनेसे थोडी थकावट महसूस हुई, इसलिए पानी पिया। खुदाका शुक्र है कि मेरी आँखोकी मुरव्वत इन्साफमें हायल न हो सकी।"

१५ मार्च १९५५ ई०

---

1 मुशी देवीप्रसाद मुसिफ-द्वारा सगृहीत इसाफ-सग्रहके आधार पर।

विलासिताका परिणाम

मुहम्मदशाह रगीलेका शासन-काल था। दिल्ली विलासिताके रगमे सराबोर थी। हुस्नो-इश्ककी शायरीका बाजार गर्म था। दिनको बटेरो-मुर्गोकी पालियाँ बदी जाती थी, पतगके मैच होते थे तो रातको शराबके दौर और छम-छमाछमकी स्वर-लहरियाँ गूँजती थी। बादशाहको जनताके दु ख-सुखसे कोई सरोकार नही रह गया था। वह हर वक्त रगरलियोमे मस्त रहता था। शूरवीरो एव विद्वानोके बजाय उसके दरबारमें भाँडो और मिरासियोका बोलबाला था।

उचित अवसर देखकर नादिरशाहने भारतपर आक्रमण किया तो लाहौरके सूबेदारने दिल्ली सूचना भेजी।

जब यह सूचना दिल्ली दरबारमे पहुँची, तब वहाँ शराबका दौर चल रह था। शराब पीकर हर एक बदमस्त था। सन्देश सुनकर एक दरबारीने कहा—"अजी हुजूर, असल बात तो यह है कि लाहौर वालोके मकान इतने ऊँचे है कि उन्हे बहुत दूर तक दिखाई देता है। न कोई नादिरशाह है न उसकी इतनी हिम्मत ही है कि वह हुजूर-जैसे शाहका सामना कर सके।" दूसरा बोला—"अगर आता है तो आने दो, हम तो जनानेमे हो लेगे।" तीसरा बोला—"हम भी तो देखे नादिरशाह कैसे लडता है, वह बहरे तवील गाऊँ कि वज्दमे न आजाय (बेहोश न हो जाय) तो मेरा जिम्मा।" इसी तरह सबने ही-ही, हू-हू, करते हुए आक्रमणकी बातको टाल दिया और लाहौरके शासकका सन्देश-पत्र शराबमें घोलकर पी लिया गया।

आखिर मुहम्मदशाहको अपनी अकर्मण्यताके कारण नादिरशाहके हाथ बन्दी होना पडा। लाल किलेपर अधिकार करके नादिरशाहने हुक्म दिया—"मुगलिया खान्दानकी तमाम बेगमात मेरे आगे आकर नाचे" यह नादिरशाही हुक्म सुनते ही बेगमातके होशो-हवास काफूर हो गये।

भला जिन बेगमातके मखमली गद्दोपर चलनेसे पाँवमे छाले पड जायें, बगैर छिला अगूर खानेसे कब्ज हो जाय, जो फूलोके हारपहनने पर तीन-तीन बल खायें, आँखोमें काजलका भार जिनसे बर्दाश्त न हो, चाँदनी रातमे निकले तो वदन काला पड जाय। ऐसी नाजुक मिजाज बेगमात गैर मर्दके सामने क्योकर नाच सकती थी ? मगर हील-हुज्जत बेकार थी। नादिरशाहका हुक्म मामूली हुक्म नही था। लाचार उन्हे नादिरशाहके सामने जाना पडा। नादिरशाह दीवाने-आममे 'मयूर-सिहासन' पर लेटा हुआ था, उसकी आँखे मिची हुई थी। सिरहाने खजर रखा हुआ था। बेगमात डर रही थी, नीद खुलते ही नाचना होगा। नादिरशाहकी आँख खुली। तेवर बदलकर बोला—"चली जाओ मेरे सामनेसे, तुम्हारा नापाक साया पडनेसे कही मै भी बुजदिल न बन जाऊँ। तुम लोग ऐशो-आराममे पडनेसे इतनी बुजदिल हो गई हो कि तुम्हे अपनी अस्मतका भी खयाल नही। जो बेगमात गैर मर्दके सामने खौफसे नाचनेको तैयार हो सकती है, उनकी औलाद क्या खाक राज करेगी ? मै यहाँ औरतोके नाच देखने नही आया हूँ। तुममे-से एक भी खुद्दार और बाहिम्मत न निकली जो मेरे सिरहाने रखा हुआ खजर मेरे सीनेमे भोकनेका हौसला करती।"

जनवरी १९२७ ई०

• • •

१ घटना प्रामाणिक है, परन्तु इतिहास-ग्रन्थ-स्मरण नहीं रहा।

मैनोश तो है, मगर बेखुद नहीं

जहाँगीर बादशाहकी मैनोशीकी शुहरत देशको लाँघकर विदेशोमे भी पहुँच गई। ईरानके बादशाहने ठीक परिस्थितिका अध्ययन करनेके लिए अपने एक विश्वस्त दक्ष गुप्तचरको भारत भेजा, ताकि राजकीय गफलतकी अफवाह सत्य हो तो भारत पर आक्रमण कर दिया जाय।

गुप्तचर एक बडे जौहरीके वेषमें भारत आया। आगरेमे शाही महमान हुआ। जहाँगीरसे भेट करनेका सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। जहाँगीर और छद्मवेशी जौहरी एकान्तमे बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे। शराबका दौर चल रहा था और जवाहरात भी देखे जा रहे थे। तभी बादशाहके दो पालतू शेर उधर-आ निकले। बादशाहने उनको प्यारसे थपथपाया और एक हिरन उनके खानेके लिए मँगवा कर आधा-आधा दोनोके सामने डाल दिया। एक शेर अपना हिस्सा छोडकर दूसरेके हिस्सेपर झपटा तो जहाँगीर-ने उस शेरका एक ही तलवारमे काम तमाम कर दिया। जौहरीने हाथ बाँधकर अर्ज किया—"जहाँपनाह, शेरको मारनेकी वजह खाकसारकी समझमे न आई।"

जहाँगीर जवाहरातको परखते-परखते ही बोला—"जो दूसरोके हक पर झपटते है, हमारे यहाँ उनका यही अजाम होता है।"

जौहरी सुनकर सिहर उठा। किसी प्रसगपर ईरानके बादशाह अपनी मलकासे कह रहे थे—"जहाँगीर मैनोश तो है, मगर बेखुद नही।"[1]

१७ मार्च १९५५ ई०

---

१. यह घटना सम्भवतः १९३२ में मियाँवाली जेलमें मेरे साथी मुहम्मदशरीफने सुनाई थी। किसी इतिहास-ग्रन्थमे नहीं पढी।

सवला

निर्वलता अत्याचार और पापकी जननी है। जो कौम निर्वल है, वह अधार्मिक है। धार्मिकता उससे कोसो दूर रहती है। पापी मनुष्य ही भयभीत और शकित रहता है। धर्मात्माके पास भय और आशका फटकने भी नही पाते। सम्यग्दृष्टिका भय-रहित होना लाजिमी है। इन्ही विचारोमे निमग्न कुछ कागज इधर-उधर देखते हुए २८ अप्रैल १९३९ के हिन्दुस्तान अखबारकी एक कटिंगपर भी नजर पडी। यह देखनेको कि क्यो यह कटिंग सँभालकर रक्खी हुई है, अखबार खोलकर देखा तो उसमें निम्न समाचार छपा हुआ था—

"झासीकी कचहरीमें उस समय सनसनी फैल गई, जब कि एक लड़कीने पुलिस-इन्सपैक्टरको खुली अदालतमें मल्लयुद्धके लिए ललकारा। यह घटना उस समयकी है जब इस लडकीपर दफा ३०२ (कत्ल) के मुकदमें-की सुनवाई एस०डी०ओ० मऊ गरौठाकी अदालतमें हो रही थी। लडकीका बयान है कि उसने ठाकुर पीतमसिहको जब वह उसे अकेला पाकर रातको उसके घरमें घुस आया और उसके सतीत्वको नष्ट करना चाहा, जमीनपर पटककर कत्ल कर दिया। पुलिस-इन्सपैक्टरने लडकीके बयानका विरोध करते हुए कहा कि "यह मुलजिम पीतमसिह-जैसे पुष्ट शरीर वालेको जमीन पर नही पटक सकती।" इस पर लडकीने खुली अदालतमें इन्सपैक्टर साहबको कुश्तीके लिए चैलेंज किया और कहा कि—"मेरी तुम्हारी कुश्ती यही अदालतमें ही हो जाये तो तुम्हें पता चल जायगा कि मै पटक सकती थी या नही।"

समाचार क्या था? भारतीय नारी-तेजका एक जीवित उदाहरण था? इसी भारतमें जहाँ गुण्डो-द्वारा अनित किये जानेसे नारी-जीवन दूभर हो रहा है। मार्ग चलते हुए जहाँ अपमानित होनेका भय बना हुआ है। उसी

भारतमें उसी अत्याचार-पीडित नारी-समाजमे अब भी ऐसी वीर-कन्याएँ मौजूद है। इस मुकदमेका परिणाम क्या निकला? कौन दोषी और कौन निर्दोष ठहरा? यह मुझे मालूम नही है। कत्ल कैसे हुआ और क्यो हुआ, यह जानना मेरे लिए जरूरी भी नही है। मै तो केवल उस कन्याके उत्साहकी बात कर रहा हूँ जो उसने अदालतमे इन्सपैक्टरसे कही!

आज भारतीय स्त्रियोको आत्म-रक्षाके उपाय बताने जरूरी हो गये है। हमारी देवियाँ जब पर्दा हटाकर घरसे बाहर निकल पडी है, तब उन्हें अपनी रक्षाका उपाय सोचना ही होगा। एक बार भाई परमानन्दजीने कहा था कि यदि मार्गमें छेडनेवाले शोहदोका उत्तर देनेकी सामर्थ्य हमारी देवियोमें नही है तो उससे अच्छा यही है कि वे पर्देमें रहे, ताकि बदमाशोके उत्पातोसे उनकी रक्षा हो सके।

मै जानता हूँ। भाई परमानन्दजी पर्देके कायल नही थे, पर उन्होने उक्त शब्द वेदनामे पीडित होकर ही कहे थे। मै कहता हूँ घर मे रहते हुए भी कितने दिन रक्षा हो सकती है? अब तो घरोमे घुस-घुसकर उत्पात मचाये जाने लगे है। कबूतर बिल्लीके भयसे बाहर न निकले तो भी उसे अशक्य देखकर ढूँढ-फिर कर बिल्ली खायेगी ही। जब आपके पास जवाहरात है, उसकी रक्षाका भी प्रयत्न करना ही होगा। घरमे कब तक जवाहरात छुपाई जा सकती है। वहाँ भी तो डाकू पहुँच सकते है।

२७ जनवरी १९४० ई०

कोयलेकी खानमें हीरे

भारत-विभाजनके दिनोमे मजहबी दीवानोने जो नर-मेध यज्ञ किये, उन्हें देखकर मालूम होता था कि भारतमें कस्साइयो-चाण्डालोका आधिपत्य हो गया है और दया एव रहमदिलीको दफना दिया गया है। इन्सानका भेष बनाये जब भेड़िये और लकडबग्घे चारो ओर घूम रहे थे, तब भी नेकीके फरिश्ते जानपर खेलकर अपना फर्ज़ अदा कर रहे थे। एक ऐसे फरिश्तेके बारेमे दिल्लीसे प्रकाशित २९ अक्तूबर के 'उर्दू रियासत' मे निम्न वाकया शाया हुआ है—

मियावाली (नव्वे फी सदी मुस्लिम इलाके) के देहातके बीस-तीस हज़ार देहाती शहरको लूटने और हमला करनेके लिए जब मियाँवाली शहरके करीब पहुँचे तो वहाँके मुसलमान डिप्टी कमिश्नर मियाँवाली शहरसे बाहर निकल गये। आपके हाथोमे कुरान था, आपने मजमेको मुखातिब (सम्बोधन) करते हुए कहा—"यह कुरान है, इसमे मुझे दिखा दो कि कहाँ बेगुनाहोका खून और उनका लूटना जायज है। अगर तुम कुरानमे दिखा दो तो मै तुम्हे मियावाली शहरको लूटने और हिन्दुओको कत्ल करनेकी इजाजत दे दूंगा और अगर कुरानमे इसके खिलाफ हुक्म है तो याद रखो कलामेइलाहीकी बेहुरमतीके मुरतकिब (ईश्वरीय वाक्यके अपमानके दोषी) होगे।" डिप्टी कमिश्नरके यह अल्फाज़ सुनकर तमाम-का-तमाम मजमा अपने देहातको वापिस चला गया और यह वाकया है कि इस जिलेमें किसी एक हिन्दूका भी क़त्ल नही हुआ।

नवम्बर १९५२ ई०

तिनकेके बदले सोना

यह उन दिनोकी बात है, जब भारतमे आबादी कम, जगल-ज्यादा थ। आने-जानके साधन सीमित थे। अत सौ-पचास कोसका सफ़र भी लोग सरपर कफन बाँधकर करते थे। छोटे-छोटे राज्योकी भरमारके कारण सुरक्षाका उचित प्रबन्ध नही था। ठगो-बदमाशोकी दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ौतरीके कारण जन-धन हर समय ख़तरेमे थे।

एक सेठ व्यापार करने परदेश चले तो रुपया साथ लेनेके बजाय, उन्होने सोना ख़रीदकर एक पोले बाँसमे रख लिया और उस बाँसको कन्धेपर लाठीकी तरह रखकर घरसे प्रस्थान कर दिया। थोडी दूर जानेपर वृक्षके नीचे उन्हे एक और बटोही मिला जो शक्लो-शबाहतसे धार्मिक और कुलीन मालूम होता था।

वह भी सेठके साथ हो लिया और दोनो बाते करते हुए चलते रहे। थोडी दूर जानेपर बटोहीने सर खुजानेको पगडी उतारी तो पगडीपर एक तिनका लगा हुआ देखकर उद्विग्न हो उठा। सेठके पूछनेपर बोला—"न जाने यह तिनका किस पेडका मेरे साथ आ गया है, वह वृक्ष भी न जाने मेरे बारेमे कैसी कल्पना करता होगा ? मुझे क्या अधिकार था जो मै उसका तिनका अपने साथ लेता आया ? आज तिनका लाया हूँ, कल फल चुरानेकी भी नीयत हो सकती है। यह तो सरासर धोखा है। जिस वृक्षने मुझे शरण दी उसीके साथ यह विश्वासघात मुझसे न हो सकेगा ? जबतक उसका तिनका वापिस न दे आऊँगा, अन्न-जल ग्रहण नही कर सकता।" कहता हुआ बटोही उल्टे-पाँव लौट चला। सेठने बहुत समझाया कि "यह तो स्वाभाविक है, इसके लिए इतने उद्विग्न और हैरान होनेकी क्या बात है। मार्ग चलते तिनके-काँटे लग ही जाते हैं"। परन्तु बटोही न माना और वह तिनका यथास्थान छोडनेके लिए वापिस मुड गया।

साथ छूट जानेके कारण सेठको अटपटा-सा तो लगा, परन्तु वह बटोहीकी इस नेक नीयत पर मुग्ध हो गया। थोडी देरमें फिर उसे आते देख सेठ बहुत प्रसन्न हुआ।

आगे चलकर दोनो जने एक उद्यानमे भोजन करने बैठे तो कुत्ते भी आ गये। कई बार उन्हें हटानेका प्रयत्न किया गया, परन्तु वे वही चक्कर काटते रहे। कुत्तोकी हरकतसे बटोहीको ताव आ गया, वह सेठजीका बाँस-जिसमे सोना रखा हुआ था, उठाकर उन्हे खदेडनेको लपका। सेठजी आवाज दे रहे है—"अरे भई क्यो हैरान होते हो, हमारा ये क्या बिगाडते है। एक-दो टुकडा यह भी खा लेगे।" मगर वहाँ कौन सुनता था? कुत्ते इधर-उधर भागकर लौट भी आये, परन्तु वह भगा तो वापिस न आया। इतने ईमान-दारको कुछ हो न गया हो, इसी चिन्तामे सेठजी घर लौट गये। रीते हाथ व्यापार करने कैसे जाते?

२१ अगस्त १९५५ ई०

⊛ ⊛ ⊛

ये अन्धविश्वासी

पीपीगज—यहाँसे ४३ मीलकी दूरी पर स्थित शोहरतगढ नामक स्थानके पाससे एक अनोखा समाचार प्राप्त हुआ है। कहा जाता है कि "एक स्यार गाँवके पश्चिममे किसी कारणसे मर गया। मादा स्यारिनने पति-वियोगमे कई दिनो तक निराहार रहकर प्राण त्याग दिये। यह बात चारो ओर फैल गई और लोग झुण्ड-के-झुण्ड आकर, उस स्थानकी पूजा करने लगे। वहाँ एक वेदी बना दी गई है। जहाँ लोग आकर अपनी मनौतियाँ मना रहे है।"

इलाहाबादसे प्रकाशित २४ जुलाई की अमृतपत्रिकामे उक्त समाचार पढा तो इन हियेके अन्धोकी ऐसी कई हरकते स्मरण हो आई।

× × ×

बचपनमे किसी शास्त्रमे पढा था कि अमुक शहरमे राजाकी सवारी निकल रही थी कि राज्य-कर्मचारियोने देखा कि जुलूसके मार्गमे किसी बच्चेने टट्टी कर दी है। राजाकी सवारी नजदीक आ चुकी थी, महतरको बुलवाकर उठवानेका समय नही था। चट एक दूरन्देशने वही खड़े हुए मनुष्योसे फूल लेकर उसपर डाल दिये। राजाकी सवारी निर्विघ्न गुज़रनेके बाद भीड़के लोगोमें-से कुछने कौतूहलवश जमीन पर फूल चढानेका कारण पूछा तो किसी मसखरेने कह दिया—"पृथ्वीसे गन्दी देवी प्रकट हुई है।" इतना सुनना था कि हियेके अन्धोने फूल चढ़ाने शुरू कर दिये और एक अवसरवादी मजहबी दीवानगीके नाम पर गाँठके पूरे लोगोसे चन्दा उगाहकर उसी स्थानपर मन्दिर बनवाकर महन्त बन बैठा।

उक्त कथा जब पढी तो हँसी खूब आई, परन्तु घटनाकी वास्तविकता पर विश्वास नही हुआ। भला, माथेमे आँखें होते हुए भी मनुष्य ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्य कर सकता है? हरगिज, हरगिज नही। लेकिन मेरा

यह सन्देह एक लेखके पढनेसे दूर हो गया। जहाँ तक मुझे स्मरण पडता है, इसके लेखक प्रसिद्ध समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायण थे ।

उनके लेखका साराश यही था कि --"विहारके अमुक इलाकेमें टामी बावाकी वहुत अधिक मान्यता है। दूर-दूरसे लोग आकर उसकी कब्रपर मनौतियाँ मनाते है, माथा रगडते है। कब्रो और पत्थरोकी पूजा तो अपने देशमे कोई अनहोनी वात नही, सर्वत्र इस प्रथाका वोलबाला है, लकिन टामीवावाके वेढगे नामसे मुझमे कौतूहल यहाँ तक वढा कि जैसे भी हो, वास्तविक तथ्यके जाननेको मै वेचैन हो उठा और १९४२ के आन्दोलनके बाद जब मुझे स्वतन्त्र घूमने-फिरनेका अवसर मिला तो व्यस्त होते हुए भी टामीवावाकी शोध-खोजको निकल पडा । वहुत परेशान होनेके वाद कब्रके अहातेमे ही रहनेवालेसे विदित हुआ कि यहाँ एक अग्रेज अफसर रहा करता था। सन्तान न होनेके कारण पति-पत्नी वहुत दु ख महसूस किया करते थे, और सन्तानोचित समस्त लाड-प्यार वे अपने टामी कुत्ते पर उँडेल कर सुखका अनुभव किया करते थे कि दुर्भाग्यसे वह भी मर गया। टामी मरा तो वह दम्पति इस तरह बिलख-बिलख कर रोते थे कि कोई क्या अपनी औलादको रोयेगा। उसकी कब्र उन्होने अपने इसी बँगलेके वगीचेमे बनवाई, रोजाना उसकी स्मृतिमे आँसू और फूल चढाया करते थे। उनकी देखा-देखी बँगलेके हिन्दू-मालियो और नौकरोने भी फूल चढाने शुरू कर दिये। वस फिर क्या था, भेडिया-चाल शुरू हो गयी। अग्रेज तो विलायत चला गया। मगर उसके कुत्तेकी पूजा वरावर हो रही है।"

लेख पढकर वेसाखता मुँहसे निकल पडा-जो हिन्दुस्तानी कुत्तेकी भी पूजा कर सकते है, उन्हे अग्रेज अगर कुत्ता कहते है तो क्या बुरा कहते है। दिल्लीमे यमुनाके पास कुदसिया वाग है। कुछ इलाकेके स्नानार्थियोको उसीमेसे होकर गुजरना पडता है। वगीचेके एक सकीर्ण मार्गके दोनो तरफ

म्यूनिस्पल कमेटीने ताँगे आदिकी रोकके लिए दो पत्थर गढवा दिये है। किसी कौतुकीने उन पत्थरोंपर तनिक-सा सिन्दूर लगा दिया। बस फिर क्या था, उन पत्थरोको देवता बनते देर न लगी। आते-जाते हजारो स्नानार्थी फूल-जल चढाते है, मत्था टेकते है।

सन् १९१० मे श्रवणबेलगोलमे बाहुबलि स्वामीका महामस्तकाभिषेक था। भारतके कोने-कोनेसे लाखो जैन एकत्र हुए थे। म० भगवानदीन जी ने श्रद्धाका मापदण्ड परखनेके लिए एक चट्टानपर अर्घ रख दिया। दूसरे दिन जाकर देखा कि उस स्थानपर अर्घोका ढेर लगा हुआ है, और जैन भक्तिभावपूर्वक उस स्थानकी वन्दना कर रहे है।

मर्दुमशुमारीकी तरह भारतके देवी-देवताओकी भी गणना की जाय तो निश्चय ही विश्वभरकी जनसख्यासे कई गुणा अधिक बैठेगी। आकाशके तारोकी गणना हो जाना तो सम्भव हो सकता है, परन्तु भारतके देवी-देवताओकी गणना कतई नामुमकिन है।

कौन-सी ऐसी अभागी वस्तु है हमारे यहाँ, जिसकी पूजा न होती हो? पृथ्वी देवता, अग्नि देवता, जल देवता, वृक्ष देवता, सूर्य देवता, चन्द्र देवता, इन्द्र देवता ही होते तो भी गनीमत थी। यहाँ तो शूकरतकको अवतार मान लिया गया है। अकेले गौमे तैंतीस करोड देवताओकी स्थापना करनेसे ही सन्तोष नही मिला, पहाडोके करोड़ो पत्थर देवता बना डाले। हर नदी-नाले पूज्य बना दिये गये।

किसी मसखरेने मोरीके पत्थरको चूनेसे पोतकर रातको दीया जला दिया। दूसरे रोज़ ही वह पीरका थान बन गया और मुहल्लेकी बहुएँ नाकमे नथ पहनकर दीप सँजोनेको निकल पडी है। अब क्या मजाल जो मकान मालिक उसे हटा सके? मकान गिर पडा है, मालिक उसे दुबारा बनवाना चाहता है, मगर मजहबी दीवाने लाठियाँ ताने खडे है और ब-जिद है कि यहाँ पीरका थान बनेगा, मकान बनाना हो तो उससे हटाकर बनाओ।

बहुत-सी इमारतें पीपल निकल आनेसे बर्बाद हो रही हैं, रहनेवाले बेहद परेशान हैं। काटनेका आभास मिलते ही मजहबी दीवाने जुट जाते हैं और वे पीपल काटनेवालेका सर काटना अपना नैतिक कर्त्तव्य समझते हैं, मनुष्य काट दिया जाय तो फिर भी पैदा हो जायगा, पर पीपल देवता कटे तो फिर कहाँसे आएँगे ?

हमारे देशमे ऐसी अनेक कब्रे हैं, जहाँ मुर्दे कभी दफनाये ही नही गये। चट लोगोने साम्प्रदायिक तनातनीके अवसर पर मजहबी दीवानोको उभार कर सार्वजनिक स्थानोपर रातो-रात मजार बनवा लिये और स्वय मजावर[1] बन बैठे और जब मजार बन गया तो चिरागा करनेवालो और चढावा चढाने वालोकी अपने देशमे क्या कमी ? बाज वक्त हाथ शुद्धिको मिट्टी का ढेला न मिले, पर इस तरहके हियेके अन्धे सर्वत्र और सब जगह मिलेगे।

× × ×

ऐसे ही अन्धविश्वासियोकी बदौलत राजपूतानेमे एक ऐसी निर्लज्ज प्रथा चल पडी है कि निर्लज्जता भी भाग खडी होती है। होलीके अवसर पर किसी होलीके भडुवेने एक विशाल मिट्टीकी नग्न मूर्ति बनवाई और प्रचार किया कि जो भी वन्ध्या स्त्री इसके लिगकी पूजा करेगी, सन्तानवती होगी। उस साल तो लोग उसे देखकर खूब हँसे-उछले। फिर धीरे-धीरे पूजा होने लगी , और इस मजाकने वास्तविकताका वह रूप धारण किया कि राजस्थानके गाँव-गाँवमे ऐसी अश्लील मूर्तियाँ बनी हुई है। जहाँ प्रतिवर्ष होलीके अवसर पर खुलेआम पूजा करने उसी भक्तिभावसे स्त्रियाँ जाती है, जिस भक्तिभावसे महादेवजीको पूजने जाती है।

वह लतीफा तो सुना ही होगा कि एक गधेके मर जानेपर किस प्रकार समूचे शहर और छावनीकी फौजने सर मुडा लिये थे।

---

१ कब्रोके चढ़ावको लेनेवाले।

इन हियेके अन्धे और गाँठके पूरे लोगोसे फायदा उठानेको कभी भगत हीरालाल, कभी दादा लेखराज, कभी बाबा नेपाली पैदा होते ही रहते है। भारतमें लाखो महन्त, साधू, पण्डे, भट्टारक, फकीर, ओलिया, इन्हीके भरोसे चैनकी बसी बजाते है। धन ही नही लूटते, अस्मत-दरी भी करते है।

धर्मके नामपर पत्थरों, पेडों, नदी, नालो, गोबर-मिट्टी और लुच्चे-लफगोकी पूजा ही नही होती, धर्मके नामपर ससारमे अनेक अत्याचार भी होते आ रहे है।

सितम्बर १९५१ ई०

• • •

निन्दामें लाज

विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी बढती हुई अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति कुछ महानुभावोको फूटी आँखो नही सुहाती थी। उनके ईर्ष्यालु हृदय जब व्यथित हो उठे तो उन्होने अपनी हृदय-जन्य कलुपिता पत्र पत्रिकाओ-द्वारा बखेरनी प्रारम्भ कर दी, किन्तु विश्व-कवि निर्लिप्त भावसे सब कुछ सहन करते रहे।

प्रसिद्ध उपन्यासकार शरच्चन्द्रसे इन कटु आक्षेपोका सहन दूभर हो गया तो वे विश्व-कविके पास इस आशयसे गये कि वे इन आलोचकोका मुँह बन्द करनेका कुछ उपाय करे। आशय सुनकर विश्व-कविने शान्त कण्ठसे कहा—

"उपाय क्या है, शरत् बाबू! जिस शस्त्रको लेकर वे लोग लडाई करते है, उस शस्त्रको मै हाथसे छू भी तो नही सकता।"

और एक दिन किसी ऐसी ही बातके उत्तरमे उन्होंने कहा—"जिसकी बडाई नही कर सकता, उसकी निन्दा करनेमें भी मुझे लज्जा लगती है[1]।"

१९ सितम्बर १९५५ ई०

●

१ हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय द्वारा प्रकाशित शरत निबन्धावली पृष्ठ १२७।

चिढ़ कैसे बनती है ?

मिर्जा गालिबके पास उनके एक पडौसी नवाब साहब बैठे हुए थे। शायरीका उनको भी शौक था। दौराने-गूफतगू वे पूछ बैठे—"मिर्जा साहब, यह तो फरमाइये कि चिढ बनती कैसे है ? अजीब-अजीब किस्मकी लोगोने चिढ निकाल रक्खी है। कुछ लोग—बैंगन, मूली, हलवा वगैरह खानेकी चीजोसे चिढते है। कुछ लोग मामू, चचा, ताया कहनेसे चिढते हैं··।"

मिर्जा बात काटकर बोले—"अमाँ दफान करो इस जिक्रको। आपके यहाँ सिरका है क्या ?"

"नही तो, क्यो क्या जरूरत आ पडी ?"

"हकीमजीने नुस्खेमे लिख दिया है, और मुझे बाजारी सिरकेका यकीन नही। पडा हो तो भिजवा दीजिए जरा-सा चाहिए।"

"खुदा कस्म, सिरका कल ही खत्म हुआ है। होता तो भला मना करता और वह भी आपके लिए।"

"तब तो मजबूरी है फिर भी देख लीजिए। थोडा-सा भी हुआ तो काम बन जायगा।"

"अल्लाह जानता है, कल मेरे ही सामने खाली मर्तबान धोकर रखा गया है। काश आपने कल जिक्र किया होता।"

"कल जिक्र कहाँसे करता ? नुस्खा तो आज लिखा गया है। २–४ तोले भी इनायत हो जाता तो काफी था।"

मिर्जाके बार-बार इसरारपर नवाब साहब पहिले तो कायल-से हुए, फिर चिढ-से गये। फरमाया—"आप नाहक शर्मिन्दा कर रहे हैं। मै अब कैसे यकीन दिलाऊँ कि घरमे एक बूँद भी सिरका नही है।" मिर्जा आजिजीसे बोले—"नवाब साहब! जरूरत ही ऐसी आ पड़ी थी। वरना मैं इस तरह इसरार न करता। खुदाके लिए जरा-सा भिजवा देते।"

नवाव साहव वरहम हो गये। डटते हुए बोले—"मैं जानता हूँ या मेरा खुदा, जो घरमे एक बूंद भी सिरका हो। फिर भी आप यकीन नही ला रहे है। अब साहव कलेजा निकालकर तो मैं आपको दिखा नही सकता। यही समझ लीजिए कि मैं देना नही चाहता ?"

"नवाव साहव, आप तो नाहक वरहम हो रहे है। क्या जरासे सिरके-की औकात ? थोडा-सा भिजवा देते तो कुछ कारूँका खजाना खाली न हो जाता।"

नवाब साहबका ठहरना दूभर हो गया। वे वहाँसे वडवडाते चल दिये—"अच्छे सनकीसे पाला पडा है साहब। सठिया गये मालूम होते है। हम लाख-लाख कसमे खाये जा रहे है। मगर हजरत अपनी कहे जा रहे है। अपने-जैसा खसीस सवको समझते है। वुजुर्ग और अदीव समझ कर पास आ वैठते थे। हमे क्या इल्म था कि बेरीकी झाडीकी तरह लिपटते है तो नाको दम कर देते है।"

नवाब साहव चले गये तो मिर्जाने मुलाजिमको बुलाकर कहा—"हमारे पडोसी नवाब साहब जो अभी-अभी यहाँ बैठे थे, उनके यहाँ जाओ और एक चीनीकी प्यालीमे सिरका माँग लाओ।"

मुलाजिमके दस्तक देने पर नवाव साहव बाहर आये तो नौकरने प्याली दिखाते हुए अर्ज किया—"हुजूर, मिर्ज़ा साहबने जरा-सा-सिरका तलव फरमाया है।"

नवाब साहवको अब बर्दाश्त कहाँ ? विगडकर बोले—"अरे भई हजार मर्त्तवा कह दिया कि हमारे यहाँ सिरका खत्म हो गया है। मगर मिर्जाको यकीन ही नही आता। अब कहे तो कावेकी तरफ हाथ उठाकर कसम खाये या कुरान छूकर कहें कि ब-खुदा हमारे यहाँ सिरका नही है।"

मुलाजिमको लौटते देख मिर्जा बोले—"अरे भई तुम खाली हाथ लौट आये। एक वार फिर जाओ। आवाज देनेपर नवाव साहब आये तो

जिसकी लाठी उसकी भैंस

एक जाट पैंठसे २५०रु० की भैंस खरीद कर लिये जा रहा था कि रास्तेमें एक लुटेरा मिल गया। उसने लाठी तानते हुए कडककर कहा—"खबर-दार! आगे न वढना, भैंसका रस्सा मुझे थमाकर अपना रास्ता नाप।"

जाट खाली हाथ था। भैंसका भाव-ताव करते समय न जाने उसकी लाठी कौन उचक्का ले गया था। अत वह गिडगिडाकर बोला—"ज्वान! गरीब आदमी हूँ। वाल-बच्चे दूधको बिलख उठे तो लाचार करज काढके भैंस लाया हूँ। मुझे जाने दे, तुझे भगवान् कही और देगा।"

"हाथ आया माल छोडनेवाले कोई और उल्लू होगे। सीधी तरह भैंस हवाले करता है या धरूँ सिरपै एक लट्ठ।"

"अच्छा चौधरी, जैसी तेरी मरज़ी! ले यह भैंस। मगर खाली हाथ घर कैसे जाऊँगा, घरवाली क्या कहेगी?"

"उसके हाथमे यह लाठी थमा देना।" यह कहकर लुटेरेने अपनी लाठी जाटको देकर जो भैंसका रस्सा पकडना चाहा तो कड़कके जाट बोला—

"भैंस को हाथ लगाया तो खोपड़ी धरती पर सैन मारती दिखाई देगी। खैर चाहे तो चुप-चाप चला जा।"

"ओ-हो हाथमे लाठी आते ही आँखे बदल ली।"

"जा मूरख अपना रास्ता नाप। नही तो कपडे-लत्ते सब धरवा लूँगा। अब तो तेरे जैसे बीस पै भारी हूँ।"

अक्टूबर १९५४ ई०

ख़ानदानी ज़ोम

"कहो यार, तुम्हारा नौकर है या लद्दू-टट्टू ? एक वर्षसे ऊपर होनेको आया, मगर भागनेका नाम नही लेता।"

"सचमुच टट्टू है। मैं खुद इन रोज़ाना भागनेवाले मुलाजिमोसे तग था। सुबह आये तो शामको गायब और शामको आये तो सुबह चम्पत।"

"फिर यह कहाँ हाथ लगा भाई ? इसी नस्लका हमे भी कोई दिलाओ न यार ! तुम्हारी भाभी ता-उम्र अहसान न भूलेगी। बगैर नौकरके गरीब बहुत परेशान है।"

"परेशानीकी तो बात ही है, साहब ! अकेली जान कहाँ तक मरती-खपती रहे। आप इत्मीनान रखिये। मैं इसीसे आपके लिए मुलाजिम तलाश करनेको कहूँगा। मगर एक शर्त होगी, काश तुम्हारी श्रीमतीजी मजूर फरमाये ?"

"भई वह क्या ?"

"यही कि जब ये हज़रत तशरीफ लाये तो बोले—"साहब,हम मामूली घरानेके नही हैं। हमारी सात पुश्तने नवाबी की है। हम आपकी जाए-ज़रूर (शौचालय) तक साफ करेगे। मगर बा-इज्ज़त बोलेंगे और बुलवायेगे। हुजूर आप हमे 'नवाब साहब' कहकर आवाज़ दीजियेगा और आप कहकर बोलियेगा। जिस रोज भी चूकियेगा, उस रोज हम आपके यहाँका पानी पीना भी हराम समझेंगे। जी हाँ हुजूर, इज्ज़त है तो जहान है। खुदकशी कर लेंगे मगर वकारमे बाल न आने देगे।"

"हमे इस शर्तमे क्या आर होती। घरभर नवाब साहब कहकर आवाज देता है, आप कहकर बुलाता है। नतीजा यह है कि सुबह पाँच बजे उठकर कोठीकी सफाई करता है, बिस्तरे उठाता है। बाज़ारसे सौदा-सुलफ लाता है, जूतोपर पालिश करता है। मोटर ड्राइव करके बच्चोको स्कूल

आन-बान

"ठाकराँ, ज़रा हमारी शतरज तो लाओ।"

"मालिक, एक विनती करूँ अगर बुरा न मानें तो?"

"कहो।"

"मुझे आप ठाकराँ न कहा कीजिये। कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा कि राजपूत होकर .. ।"

"भई, जब तुम राजपूत हो, तब राजपूती मर्यादानुसार हमें तुम्हारे साथ वर्ताव करना चाहिए, इसमें तुम्हें क्या पसो-पेश है?"

"हुज़ूर, इससे मुझे गैरत आने लगती है, धमनियाँ झन-झना उठती हैं। अगर आप इसी तरह इज्जत देते रहे तो मुझसे नौकरी नही हो सकेगी। मुझे अपने पूर्वजोकी ठाकुरी-ठसक याद आने लगती है। पेटकी आगने मजबूर कर दिया, वरना .।"

"कोई बात नही, तुम इस घरको अपना ही घर समझो ठाकराँ! हम तो तुम्हें अपने परिवारका एक सदस्य समझते हैं। स्वप्नमें भी गैर नही समझते।"

"यह आपका बड़प्पन एव सौजन्य है। अन्यथा मैं अपनी मौजूदा औकातसे बेखबर नही।"

"ठाकराँ, ऐसी बात न कहो। हम भी तुम्हारे खान्दानके कारनामोंसे थोड़े-बहुत वाकिफ हैं। यह तो ढलती-फिरती छाँव है। अभी यहाँ, अभी वहाँ। जमीन-जागीर विलय हो जानेसे वश-परम्परागत गौरव-गरिमा, शील-सौजन्य नष्ट नही होते हैं।"

"हमें मालूम है तुम्हारे परपितामह शेरका शिकार पैदल ही किया करते थे। तुम्हारी दादीका यह आम दस्तूर था कि अपने दरवाज़ेसे गुजरनेवाले बटोहीको भोजन कराये या दूध पिलाये विना नही जाने

जान बची लाखों पाये

"मुंशी सम्पतलाल दिल्लीमे हमारे मुहल्लेमे ही रहते हैं। बहुत ही पुरलुत्फ, मिलनसार और मेहमाँनवाज है। अकबर बादशाहकी तरह गुणियोके कद्रदाँ हैं। शायर, शातिर, पहलवान, खिलाडी, हकीम, ज्योतिषी, लेखक, गायक आदि सभी प्रकारके कलाविद् उनकी मित्र-मडलीमे नजर आते है। दोस्तोके आडे वक्त मे काम आते है। अपने परायेसे शिष्टाचारसे पेश आते है, परन्तु फिर भी लोग उनसे घबराते है, सामने दिखाई दे तो लोग कतराके निकल जाते हैं, और इसका कारण केवल इतना-सा है कि उनकी बातोका सिलसिला कभी समाप्त नही होता। शैतानकी आँतकी तरह बढता ही रहता है।

चाहे कोई ट्रेन पकडनेकी शीघ्रतामे हो, चाहे कोइ दफतर भागा जा रहा हो, चाहे किसीका बच्चा छतसे गिर रहा हो, चाहे कोई पेटके दर्दके कारण बदहवास घर जा रहा हो। मुंशीजीका सामना होते ही साँपके सामने मेढक-जैसी स्थिति होते हुए हमने देखी है। 'दो मिनट बात सुनना' कहकर वे जो सिलसिला शुरू करते है तो फिर किसीको चाहे जम्हाइयाँ आये, चाहे वह अँगडाइयाँ तोडे, या बार-बार घडी देखकर सर खुजाये, उँगलियाँ चटखाये मगर सब व्यर्थ। मकडीके जालेके समान बातमे-से बात निकलती चली जायगी और सुननेवाला उसमे उलझता चला जायगा।

एक रोज हम बहुत बौखलाये हुए-से जा रहे थे। वेतन मिलनेमे २-३ रोजकी देर थी और श्रीमतीजी उससे पहिले ही बच्चा देनेका इरादा कर रही थी। भागवान्को काफी समझाया, मगर उसे जो तिरियाहठ लगी तो मानके नही दे रही थी। शायद अपनी माँके समझाने-बुझानेमें बाज आजाये, इसी आशासे बौखलाये हुये ससुरालकी तरफ जा रहे थे कि पीठ पर किसीका हाथ रखा हुआ देखकर चौंके तो सामने मुंशीजी खडे मुसकरा रहे थे।

किस खेतकी मूली, आपने लाहौरके सर गगारामका नाम तो सुना ही होगा। सन् १९३२-३३मे एक मुकदमेके सिलसिलेमे लाहौर रहना हुआ। उन्हीकी कोठी किरायेपर ली हुई थी। मुकदमा खत्म होनेपर मै उनके पास गया और कहा कि हम कोठी खाली कर रहे है, बिजली-नल वगैरहका जो फिटिग हमने कराया है, उसकी कीमत मुजरे करके शेष किराया लेकर चुकती रसीद दे दीजिये।"

भला बताइये साहब मने क्या खराब बात की ? मगर वे बोले—"कोठी-का किराया सालभरका बाकी है, वह दे जाइये और अपना नल-बिजलीका सामान उखाडकर ले जाइये।"

"मै इस बेहूदी बातका जवाब क्या देता, चुपचाप चला आया। भला बताइये साहब बिजली-नलकी लागत मिलना तो दरकिनार, अब उनकी उखडवाईकी लागत और लगाई जाय। सीधी उँगलियो घी कब निकलता है हजरत! रातको कोठीपर कव्वालियोकी महफिल जमी, पुलाव, जर्देके देग चढे तो शोर और सुगन्ध उनतक भी पहुँची। आकर देखा तो ५०-६० के करीब मुसलमान जोशो-खरोशके साथ कव्वालियोमे महव थे। एकान्तमे ले जाकर मुझसे दरियाफ्त किया तो मैने भोलेपनसे जवाब दिया कि—"ख्वाजा नजीमुद्दीन चश्तीके भाँजे मुलतानसे आते हुए लाहौरमे शहीद हुए थे। आपकी कोठीके अहातेमे उनकी कब्रका सूराग लगनेसे यह लोग खुशियाँ मना रहे है। एक महीनेमे बहुत बडा उर्स लगेगा।" सुना तो काठ मार गया, हजरत चुपचाप चले गये और सुबह किरायेकी चुकता रसीद भेज दी। मै जो शेष रुपया उनकी कोठीपर देने गया तो वह विस्फारित नेत्रोसे मुझे देखने लगे। मैने कहा—"आप अब विश्वास रखिये, वहाँ कोई कब्र वगैरह नही निकलेगी, उनका सिर्फ वहम-ही-वहम था।" सुना तो सन्तोषकी साँस ली और मुझे कृतज्ञता भरे नेत्रोसे देखने लगे।"

अब हम मुशीजोसे निजात पानेके लिए उसी तरह देखने लगे

इनके अखबारको निकले चन्द रोज ही हुए थे। दिल्लीमे अकेला दैनिकपत्र था, ज़ोरोसे चल निकला। बस फिर क्या था। हज़रतका ज़मीनपर पॉव ही न पडता था।' चलते थे तो नीची नज़र करके ताकि किसीके सलामके लिए हाथ न उठाना पडे। एक रोज हमसे चोच खोल बैठे। हमने वही झाडा—"तेरे-जैसे न जाने कितने चरकटे मैंने सीधे किये है। दूनकी न हॉकना, वरना सब कस-बल निकाल दिये जायेगे। मगर वह जो किसीने कहा है कि गीदडकी मौत आती है, तो गॉवकी तरफ भागता है। इसकी भी शामतने धक्का दिया और हमसे उलझ गया।

बस साहब जितने हाकर थे, मकानपर बुलवा लिये और जो जितने अखबार रोजाना बेचता था, उसी हिसाबसे उनकी मजदूरी एक माहकी पेशगी देकर दफ्तर जाना बन्द करा दिया। एक-दो रोज तो चपरासी वगै-रहसे कुछ काम निकालना चाहा। मगर साहब आखिर रो पडे और घर आकर पाँव पकड लिये। और गिडगिडाकर बोले—"हुजूर मुझे मालूम न था आप ही फलॉ है, वरना मेरी क्या मजाल जो मै लब-कुशाई करता? मै भला वह बात कैसे भूल सकता हूँ।" जब राउण्टेबिल कान्फ्रेन्सके अवसर-पर पचम जार्जने बकिंघम पैलिसमे डिनरके वक्त महात्मा गाधीसे पूछा था कि आपके यहॉ ऐसा कौन व्यक्ति है, जिसके केवल नामसे तार और पत्र पहुँच सके, और पता लिखनेकी जहमत न उठानी पडे। तब महात्माजीने सगर्व उत्तर दिया था कि "भारतमे मुंशी सम्पतराय ही ऐसे व्यक्ति है, जिनको पत्र लिखते समय लोग शहर आदि नही लिखते।" प० जवाहरलाल नेहरू बैठे थे। उनकी जाकेटका कपडा प्रिन्स आफ वेल्सको इतना पसन्द आया कि वे अपने पदके मर्त्तबेको भूलकर कह बैठे कि मि० नेहरू एक सूटके लिए यह कपडा हमारे लिए भी मँगा दे।

प० नेहरू मुसकराकर बोले—"साहब, सूटका कपडा कहाँसे मँगा दूं। मुझे ही ब-मुश्किल एक वास्केटका मिला है। माताजी काश्मीर गई तो

कन्धा झिझोडकर कहा—"कहो भाई साहब, अपनी स्टेटकी पैरवीके लिए कौन-सा वकील किया है ? ना भाई हमारे वाला वकील हरगिज न करना, सारी स्टेट हाथसे निकल जायेगी। वकील करना है तो हमारे विरोधी वकीलको करो। आजकल उसीका बोलबाला है। हमे नाको चने चबा रक्खे है।"

मै बात करता हुआ उसे अदालतसे बाहर ले गया कि कही गावदी बीचमे बोलकर भण्डा न फोड दे। लचके थोडी देर बाद अपने वकीलसे मालूम हुआ कि तारीख़ हमारी इच्छानुसार पड गई है। अब जो घर जानके लिए ताँगेमे बैठता हूँ तो विरोधी वकील पतलून सम्भालते, लपकते हुए मेरे पास आकर बोले—"कहिये मुँशीजी आप किनसे कौन-सी स्टेटके बारेमे बाते कर रहे थे ?" मैने ताँगेवालेको हाँकनेका इशारा करते हुए उनसे कहा—"वह हमारा नाई था। मालूम हुआ कि उसका जजसे बहुत मेल-जोल है, इसलिए तारीख़ बदलवानेको बुलवा लिया था।" हज़रत बडे सकपकाये।"

"और हजरत आपने वह वाकिया सुना या नही ? हमारे हमजुल्फके लडकेका रिश्ता अम्बाले निश्चित हुआ था। साली साहिबा हमसे किसी बातपर बिफर गई। हमने कहा चलो लगते हाथ इन्हे भी सबक दिया जाय। बारातकी तारीखसे सात रोज पहिले बेटीवालेको साढू साहबकी तरफसे तीन पैसेका कार्ड लिख दिया कि बारात ट्रेनसे न आकर ५०० बेसूँडके हाथियोपर आयगी। रातब-दानेका इन्तजाम करले। खत पढते ही बेटीवालेने सर पोट लिया। उनके घर पहुँचकर बाही-तबाही बकने लगा। दोनो समधियोमे थोडी देरको वोह बमचख मची कि लुत्फ आ गया।"

"और आपके वे नेताजी एक ही झटके मे ऐसे मुँहके बल गिरे कि दुबारा उठना नसीब न हुआ। मैने उनसे कहा—"हजरत हमारे आदमीके शराब लेते वक्त नजरे चुरा लिया कीजिये। हमारेपर यह आपका पिकेटिंग उचित नही। मगर वह तो एक ही लाठीसे सबको हाँकना

हमारे अन्ध-विश्वास

"**क्यों** साहब आप तो पानी पीने जा रहे थे रुक क्यो गये ?"
'अजी, बिल्ली रास्ता काट गई "

"क्यो साहब ! आपके मुक़दमेका क्या हुआ ?"
"होता क्या खारिज हो गया, घरसे चलते वक्त जो काणा मिल गया था, मेरा तो तभी माथा ठनका था।"

"आपके पेटमें दर्द है तो जाकर दवा क्यो नही ले आते ?"
"कैसे लाऊँ ? नाकका स्वर ठीक नही चल रहा है।"

"क्यो साहब ! आपके घरमें आग कैसे लग गई ?"
"आज उठते ही एक नकटेका मुँह देखा था।"

"क्यो जी, सुना है आपके लडकेने आपकी इन्तजारमे तडप-तडपकर जान दे दी पर आप तार आनेपर भी न गये।"
"अरे साहब ! जाता कैसे, उस रोज उधर दिशाशूल जो था।"

"आपकी पत्नीको हैज़ा कैसे हो गया ?"
"भोजन करते हुए छीक हुई थी।"

"शत्रुओने देशपर आक्रमण कर दिया है, आप तलवार क्यो नही उठाते।"
"ज्योतिषी कहते हैं अभी मुहूर्त्त ठीक नही है।"

यह आपके मकानमे इतना हिस्सा अलग क्यो है ?"
"ये सैय्यदका थान है !"

"आप हलुएपर ही हाथ साफ कर रहे है, रोटी-दालके भी तो हाथ लगाइये !

"आज इतवार है, हम नमक नही खाते !"

"आप इन दिनो उदास क्यो नजर आते है ?"

"ज्योतिषीने बताया है कि हमारी तीन माहमे मृत्यु हो जायगी ।"

"पहले होती या न होती, पर यही वहम रहा तो अब अवश्य हो जायगी।"

"घरका मकान छोडकर किरायेके मकानमे कैसे रहने लगे ?"

"वह पण्डितजीने हमारे लिए मनहूस बताया है ।"

"तब वह मकान आपने पण्डितजीको क्यो नही दे दिया ?"

"यह आप शादीके अवसरपर कुम्हारका चाक और कूडेका ढेर क्यो पूजते है ? दूल्हा-दुल्हनके हाथमे छडी देकर उन्हे एक-दूसरेको पीटनेके लिए क्यो कहते है ?"

"कारण तो मालूम नही, पर हमारे यहाँ यह रिवाज सदासे होते आये है ।"

"जो रिवाज गलत है उन्हें छोड क्यो नही देते ?"

"अजी, औरते वहम करती है ।"

"तुम्हारे गाँवमे हैजा फैला हुआ है और तुम कुत्तोको दूध पिला रहे हो । कोई बाहरसे अच्छा-सा चिकित्सक क्यो नही बुला लेते ?"

"अजी, चिकित्सक क्या करेगा, यह सब हमारे पापोका फल है । पापोको कम करनेके लिए ही कुत्तोको दूध पिला रहा हूँ ।"

"पापोको कम करनेके बजाय उन्हे छोड ही क्यो नही देते ?"

"भला, ऐसा भी कही होता है ।"

नानीके अनुभव

[१]

"नानी, ये पतगे दीपकपर आकर क्यो झुलसते है ?"

"बेटा, क्षुद्र जो महान्की समीपता चाहते है, उनका यही परिणाम होता है। प्रकाशका दूरसे लाभ लेना चाहिए, समीप जानेपर विनाश निश्चित है।"

[२]

"यह फूलोपर ओस क्यो पडती है नानी ?"

"यह ओस नही है बेटे, आकाशके आँसू है।"

"आकाश भी रोता हे नानी ?"

"हाँ बेटे जब वह किसीको मृत्यु-मुखमे जाते देखता है, तब रोता है।"

"तब क्या नानी, यह फूल मृत्यु-मुखमे जा रहे है ?"

"हाँ बेटे, यह फूल अपने सुखमे फूले नही समा रहे है। यह इतने तन्मय होकर हँस रहे है, कि इन्हे यह भान भी नही होता कि कल जो फूल हँसे थे, उनकी क्या गति हुई। उनकी इसी मूर्खतापर आकाश रातभर रोता रहा है, हवा सर पीटती रही है।"

"फिर भी इन्हे समझ क्यो नही आती नानी ?"

"विनाशके समय बुद्धि भी विनाशमयी हो जाती है, बेटे !"

"क्या हँसना भी मूर्खता है नानी ?"

"नही बेटे, हँसना मूर्खता नही, वह स्वस्थ्य-जीवनके लिए अत्यन्त आवश्यक रसायन है। लेकिन इतने जोरसे हँसना ठीक नही कि तमाशा देखने दु.ख भी दौडकर चला आये। वह ठीक सुखके पडोसमे रहता है।"

समुद्र खारा क्यों ?

अपने परिवारके साथ किशोर बम्बई गया तो उसने अपने जीवनमे पहली बार समुद्र देखा। प्यास बुझानेके लिए ज्यो ही उसने अजुली भरकर पानी मुँहमें लिया कि मारे कडवाहटके वह गलेसे नीचे न उतार सका और अक थू-अक थू करने लगा। उसके किशोर-सुलभ कौतुकपर सभी हँसने लगे। वह झेंपकर बोला--

"पिताजी, आप तो कहते थे कि दुनियाके सभी दरिया, समुद्रमे जा मिलते है। फिर समुद्रका पानी इतना खारा क्यो ? जब कि हर दरियाका पानी मीठा होता है।"

"बेटे, यह समुद्र लेता ही लेता है, देता एक बूँद भी नही। जो केवल सचय करता है, उसमे कडवाहटके अतिरिक्त और होगा ही क्या ?"

"और यह इतना उद्विग्न क्यो हो रहा है ?"

"जीवनभर लिया ही लिया, दिया कुछ भी नही, इसी आत्मग्लानिके कारण।"

"आप तो कहते थे समुद्रका पानी सूर्य सोखता रहता है। वही पानी बादल बनकर बरसता है। फिर आप यह कैसे कहते है, कि देता एक बूँद भी नही ?"

"छीने जाने और देनेमे पृथ्वी-आकाशका अन्तर है बेटे! तुम्हारे पैसे कोई छीन ले तो वह देना नही हुआ। देनेकी भावनासे दिया गया ही देना होता है।"

१८ सितम्बर १९५५ ई०

लातोंके भूत

नानू भाईकी साध थी कि वह अपना समस्त जीवन ग्रामोद्योगके कार्यो में खपा देगा। एक तो उसे शहरी वातावरणमे पढते-पढते शहरोसे अरुचि हो गई थी। दूसरे उसकी शिक्षा-दीक्षा भी उसी तरह की हुई थी। अत शिक्षा समाप्त करके जब वह अपने गाँव पहुँचा तो खेती-बाडी के कामोमे पिताका हाथ बटाने लगा।

एक रोज पिताके आदेशसे नानू भाई खेतोकी रखवालीको गया तो वहाँ एक गधा स्वच्छन्द विचर रहा था। खेतको खा भी रहा था और रौंद भी रहा था। नानू भाईने गधेका यह आचरण देखा तो हाथ जोडकर बोला—
"हे वैसाखनन्दन ! आपने किसकी आज्ञासे हमारे खेतमे पदार्पण किया है ! आपके पोषणके लिए हमारे खेतोके बाहर काफी खाद्य मौजूद है, फिर भी आप हमारे खेतमे विचरण कर रहे हैं ? यह आपकी शोषण-नीति उचित नही। 'जो कमायेगा, वही खायगा', क्या आपने यह सिद्धान्त श्रवण नही किया ? पर-क्षेत्रोपर अधिकार-लिप्साका सामन्ती-युग अब समाप्त हो रहा है। अत आप कृपा करके अविलम्ब हमारे खेतका परित्याग कीजिये। यदि आपने मेरे अनुनय-विनय पर ध्यान नही दिया तो आपके आगे लेटकर मुझे सत्याग्रह करना पडेगा, यदि फिर भी न माने, तो भूख-हडतालका अमोघ अस्त्र मुझे सँभालना होगा। इससे आपका अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रोमें बहुत अपयश होगा। अत मेरी करबद्ध प्रार्थना है, कि आप वह स्थिति आनेसे पूर्व ही हमारे क्षेत्रको मुक्त कर दे। इस प्रकार हमारे, आपके मैत्री सम्बन्ध भी अक्षुण्ण बने रहेंगे और हमारा सहयोग भी सदैव साथ रहेगा।"

नानूभाई सुबह-से शामतक करबद्ध प्रार्थना करता रहा, परन्तु गर्दभ-राजका हृदय न पसीजा। वह यथाशीघ्र सूर्यास्तसे पूर्व खेतको पेटमें रख

मित्रता और दासता

यह उस युगकी बात है, जब मनुष्योको सचयका चस्का लग चुका था और वह हर उपयोगी वस्तुको हस्तगत करने एव अपने अधीन बनानेकी धुनमे लीन रहने लगा था। वनमे लकडियाँ काटते हुए एकदिन उसने सिह और हाथीका युद्ध देखा। आकाशभेदी दहाड और चिघाड सुनकर वह काँप उठा और भयके मारे पेडपर चढ गया।

कभी सिह उछलकर हाथीके मस्तकको विदीर्ण करनेका प्रयास करता तो कभी हाथी सिहको सूँडमे लपेटकर पाँवसे कुचलना चाहता। सिहकी स्फूर्ति एव दाव-घात देखकर मनुष्यका हृदय बैठा जाता था तो हाथीके घातक प्रहारोको देखकर मस्तिष्क शून्य हुआ जारहा था। फिर भी मनुष्यने यह अनुमान कर लिया कि सिह उसके लिए तीन कालमे भी उपयोगी न होकर भयानक बना रहेगा और हाथी प्रयत्न करनेसे उपयोगी बनाया जा सकेगा।

द्वन्द्वयुद्धमे अब सिह सवाया पड रहा था, हाथीकी चिघाड कराहनाका रूप लेने लगी थी और यह स्पष्ट दीखने लगा था कि अब धराशायी होनेमें हाथी विलम्ब नही करेगा। तभी मनुष्यने पेडपरसे तीन-चार तीर ऐसे मारे कि सिह लोट-पोट हो गया।

ऐसे घोर सकटके समय सहायता करनेवाले मनुष्यको हाथीने मस्तक नँवाकर प्रणाम किया। घुटने टेककर कृतज्ञता प्रकट की। सूँड उठाकर आशीर्वाद दिया, चिघाडकर जय-जयकार की और आँखो-आँखोमें यह आभास भी दिया कि अकारण निस्वार्थी बन्धुका उपकार कभी विस्मरण नही किया जा सकेगा, प्राण देकर भी सेवा की जा सकेगी।

हाथीके इन कृतज्ञता-सूचक भावोसे मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ। मनुष्य और पशुओकी वाणीमे उन दिनो विशेष अन्तर नही था। उन दिनो भाषा न पुस्तकोमें सीमित की हुई थी, न देश, प्रान्त, जातियोके बाडेमें बँधी थी

हाथी सहज-स्वभावसे बोला--सखे, निस्सकोच मनोभाव व्यक्त कीजिये। मित्रसे छुपाव क्या ? प्राण रहते आपकी बात मानूंगा।"

मनुष्य गद्‌गद होकर बोला--"भद्र, आपसे मुझे यही आशा थी। मेरी अभिलाषा है कि हम एक प्राण दो शरीर न रहकर एक प्राण और एक शरीर हो जायें ?"

मनुष्यके उक्त विचार सुनकर हाथीका रोम-रोम पुलक उठा। वह विश्वास भरे स्वरमें बोला--

"साधु-साधु, परन्तु मित्र, यह शुभ सकल्प किस प्रकार कार्यान्वित हो सकेगा ?"

मनुष्य हाथीको थपथपाते हुए बोला--"वह इस तरह कि कभी तुम मेरे ऊपर बैठकर चलो और कभी मै तुम पर बैठकर चलूँ। इस तरह हम-तुम एक शरीर और एक प्राण हो सकेगे। फिर अकेला पाकर हिसक पशुओको आक्रमण करनेका साहस कभी न होगा।"

मनुप्यका प्रस्ताव सुना तो हँसते-हँसते गजराजके पेटमें बल पड गये। ब-मुश्किल हँसी रोककर बोला--"शुभेच्छु, तुम्हे मेरी रक्षाकी इतनी घोर चिन्ता है कि मुझे अपने ऊपर बिठानेकी भी अभिलाषा रखते हो ? स्नेह-मोहके कारण यह भी ध्यान नही रहा कि हाथीका वज़न उठाना मनुष्यके लिए असम्भव है। हाँ तुम्हें अपने ऊपर बिठाकर चलनेमे मै अपना अहोभाग्य समझूँगा ?"

शनै-शनै गजराजपर अम्बारी भी कसी जाने लगी, फीलवान भी बैठने लगा। पाँवमें जजीर भी सुशोभित होने लगी। और उत्तरोत्तर मानव और हाथीकी मित्रता दृढ-से-दृढतर होती गई। परन्तु न जाने क्यो कुत्ते भूँक-भूँककर हाथीको समझाते रहते है, कि यह मित्रता नही दासता है, परन्तु हाथी अभी तक वास्तविक स्थितिका निर्णय नही कर पाया है। इसी चिन्तनमें उसकी आँखे छोटी होती जा रही है।

२५ सितम्बर १९५५ ई०

आजादीकी तड़प

एक पेड पर वहुत-से तोते बैठे हुए कलरव कर रहे थे कि उन्हीके पास एक और तोता कुछ अलग-अलग-सा बैठा उनको पुलकित भावसे देख रहा था। इस नये साथीकी उपस्थिति तोतोके नेतासे छिपी न रह सकी। वह पास आकर आत्मीयतासे बोला—

"अतिथि! हम आपका स्वागत करते है, हमारा सौभाग्य है कि आप यहाँ पधारे। हमे अपना बन्धु समझकर निस्सकोच हमारे साथ आहार-विहार करे।"

"शुक्रिया, मुझे अपनी कौमसे यही तवक्कोह थी।"

"किस देशसे आगमन हुआ प्यारे ?"

"बुजुर्गवार, मै इसी दरख़्तपर पैदा हुआ था ?"

"आश्चर्य, इससे पूर्व दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त नही हुआ वन्धु !"

"होता कहाँसे साहव ? मै वचपनसे ही कैद कर लिया गया था ?"

"कैद! यानी बन्दी!! तुम्हें किसने बन्दी कर लिया था भाई ? उन्मुक्त आकाशमें विचरण करनेवालेको किस अभागेने वन्दी किया था भद्र ?"

"हजरते-इन्सानने मुझे कैद किया था, जनावे आली।"

"हजरते-इन्सानने ? वह क्यो ? देखने-सुननेमे तो वह वहुत भद्र और दयालु मालूम होता है, भाई ?

"जी, उसकी यही तो ख़ूवी है—"हो जायें ख़ून लाखो, लेकिन लहू न निकले।"

"मै आपका भाव नही समझा।" आप सजातीय होते हुए भी कुछ अन्य प्रकारसे वार्तालाप कर रहे है। कृपा करके सरल भाषामे आपबीती सुनाइये।"

करते थे। पहिले तो मेरी समझमे कुछ न आता था। मगर धीरे-धीरे मै भी समझने लगा।"

"यह मुशायरा क्या होता है भाई ?"

"कुछ खास किस्मके लोग एक जगह इकट्ठे होते है, जिस आदमीके आगे रोशनी रख दी जाती है, वह कुछ गाकर कहता है, जिसे सुनकर बाकी लोग-वाह-वा, सुभान-अल्लाह, खूब-खूबका शोर मचाते है और कहनेवाला माथे पर हाथ ले जाकर 'आदाब अर्ज-आदाब अर्ज' करता रहता है ? हाँ तो एक रोज इसी मुशायरेमे सर 'इकबाल' भी आये। इनकी बहुत जोर-शोरसे लोगोने आव-भगत की। कदमोमे लोग आँखें बिछाये दे रहे थे। सबसे आखिरमें जब यह पढनेको बैठे तो लोग बा-अदब सँभलकर बैठ गये। इनका कलाम सुनते-सुनते कुछ सर धुनने लगे, कुछ वज्दमें आ गये, कुछ बे-सुध होने लगे, कुछ जार-जार रोने लगे। इनका कलाम पूरा तो मै नही समझ पाया, मगर इस शेरने मेरी हालत भी गैर कर दी और मै पिजरेमे सर पीटने लगा।

ऐ तायरे-लाहूती, उस रिज्कसे मौत अच्छी।

जिस रिज्कसे आती हो, परवाजमें कोताही॥

"इसका आशय क्या है साथी ?"

"यही कि आसमानमे उडने वाले पछी, तू कहाँ आ फँसा है। जिस चीजसे आजादीमें खलल पडता हो, वह कितनी ही आराम देह हो, उससे मौत हजार दर्जा बहतर।"

"भई, बडे पतेकी बात कही उसने। मगर इस प्रकारकी बात तुम्हारे नवाब साहबने क्यो कहने दी, रोका नही ?"

"इकबालको नवाब रोकता ? इकबाल तो खुदाके रोके भी न रुकता। मगर यह बात कुछ उसने मुझे सुनाकर नही कही थी। यह तो उसका शायराना कमाल था कि उसने गुलाम-इन्सानको इस तरह गैरत दिलाई।"

नींवकी ईंट

राजभवनके निर्माणका कार्य प्रारम्भ था। एक तरफ नीवमे ईंटे जमाई जा रही थी। दूसरी तरफ भवनपर लगनेवाले शिखरको पच्चीकारीसे सजाया जा रहा था। ईंटोकी यह स्थिति देख शिखर सगर्व बोला—

"यह ईंटे भी कितनी तुच्छ है? इतने बडे भवनमें इनका कही भी नामोनिशान दिखाई न देगा। बेचारी मिट्टीसे बनी मिट्टीमें मिला दी जायेंगी। सभी आने-जानेवालोकी मुझी पर दृष्टि होगी। सूर्य, चन्द्रमा भी मुझे निहारते हुए निकला करेंगे। तारे एक टक मुझे देखा करेंगे।"

ईंटोको जवाब देनेका अवकाश नही था। भवनकी नीवमें सबसे पहिले कौन लगे इसी होडमें व्यस्त थी।

एक रोज भूचाल आया तो महलका शिखर नीवकी ईंटोके पास पडा बिलख रहा था। उनमें-से एकने सान्त्वना भरे शब्दोमें पूछा—"तेरी यह दुर्दशा किसने की भाई?"

"भूकम्पने।"

"भूकम्प क्या होता है भाई?"

"जब पृथ्वी काँपती है तो भूकम्प होता है बहन!"

"पृथ्वी क्यो काँपती है भाई?"

"पृथ्वीमे आग होती है, जब वह आगसे तप्त हो उठती है तो उसकी तापसे पर्वत फटने लगते है और पर्वतोके धमाकेसे पृथ्वी काँपने लगती है?"

"पृथ्वीमें आग क्यो होती है, भाई?"

"सुना है बहन, विश्व-निर्माणमें जो बलि होते है, उनके सीने पर पाँव रखकर जब उन्हीके साथी ऐश्वर्य-रत रहते हुए भी उनका उपहास करते है तो कभी-कभी यह उपहास इतना असह्य हो उठता है कि शहीदोंके मुँहसे बरबस निःश्वास निकल पडते है। यही निःश्वास पृथ्वीको दहकाते रहते है और एक दिन भूकम्पके रूपमें प्रस्फुटित होते है।"

२ अक्टूबर १९५५ ई०

सिह जगलको उल्टे-पाँव लौट गया। पण्डितजीको अब खून मुँह लग चुका था। फिर एक रोज वनराजके यहाँ निर्भय पहुँच गये। सिहने देखा तो बोला--"अब तुम बचकर नही जा सकते, मै तुम्हे अवश्य खाऊँगा।"

ब्राह्मण देवता बहुत सिटपिटाये। अब उन्हे ससार-भोगका चस्का लग चुका था। वे जीना चाहते थे। प्राण-भिक्षाके लिए अनुनय-विनय करने लगे तो सिह बोला--"एक शर्तपर तुम्हे छोड सकता हूँ, और वह यह कि यह कुल्हाडी मेरे सरपर कसकर मारो।"

"पण्डितजीने काफी हील-हुज्जत की, परन्तु सिह अपनी जिदपर अडा रहा--"या तो मेरा आहार बनो, या मेरे कुल्हाडी मारकर धन बटोरकर घर जाओ।"

पण्डितजीने मित्रसे अधिक अपनी जान और धनको तरजीह दी और कुल्हाडी उठाकर सिहके सरपर इतनी जोरसे मारी कि उसका काफी सर फट गया और वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पडा। पण्डितजी धन बटोरकर घर आये। १०-५ रोजके बाद लोभ-वृत्तिने फिर उकसाया। "धन तो वहाँ अब क्या खाक होगा, उस रोज सब समेट ही लाया था, परन्तु सिह मर गया होगा उसकी खाल क्यो छोडी जाय ? पूजा-पाठमे आसनका काम देगी।"

यथा स्थान पहुँचे तो वनराजको मादके बाहर खडे पाया। देखकर प्राण देवता कूच करना ही चाहते थे कि साहस बटोरकर बोले--"वनराज बन्धु, यह देखकर परम प्रसन्नता हुई कि आपके मस्तकका घाव भर गया है और कुल्हाडीका चिह्न तक शेष नही है।"

"हाँ, मस्तकका घाव तो भर गया, परन्तु हृदयका घाव नही भरा और न उसके भरनेकी आशा है।"

"हृदयका घाव कौन-सा बन्धु ?"

"वही कि यह सिंह कुत्तेसे भी गया-गुजरा है।" "न मै तुमसे मित्रता करता न कुत्तेसे गया-गुजरा बनता।"